

आनंदमठ

संन्यासी आंदोलन और बंगाल अकाल की पृष्ठभूमि पर लिखी गई बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय की कालजयी कृति 'आनंदमठ' सन 1882 ई. में छप कर आई। इस उपन्यास की क्रांतिकारी विचारधारा ने सामाजिक व राजनीतिक चेतना को जागृत करने का काम किया। इसी उपन्यास के एक गीत 'वंदेमातरम' को बाद में राष्ट्रगीत का दर्जा प्राप्त हुआ।

'आनंदमठ' में जिस काल खंड का वर्णन किया गया है वह हन्टर की ऐतिहासिक कृति 'एन्नल ऑफ रूरल बंगाल', ग्लेग की 'मेम्वाइर ऑफ द लाइफ ऑफ वारेन हेस्टिंग्स' और उस समय के ऐतिहासिक दस्तावेज में शामिल तथ्यों में काफी समानता है।

बहुत विस्तृत जंगल है। इस जंगल में अधिकांश वृक्ष शाल के हैं, इसके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के हैं। फुनगी-फुनगी, पत्ती-पत्ती से मिले हुए वृक्षों की अनंत श्रेणी दूर तक चली गई है। घने झुरमुट के कारण आलोक प्रवेश का हरेक रास्ता बंद है। इस तरह पल्लवों का आनंद समुद्र कोस-दर-कोस-- सैंकड़ों-हजारों कोस में फैला हुआ है, वायु की झकझोर झोके से बह रही है। नीचे घना अंधेरा, माध्याह्न के समय भी प्रकाश नहीं आता-- भयानक दृश्य! उत्सव जंगल के भीतर मनुष्य प्रवेश तक नहीं कर सकते, केवल पत्तों की मर्मर ध्वनि और पशु-पक्षियों की आवाज के अतिरिक्त वहां और कुछ भी नहीं सुनाई पड़ता।

एक तो यह अति विस्तृत, अगम्य, अंधकारमय जंगल, उस पर रात्रि का समय! पतंग उस जंगल में रहते हैं लेकिन कोई चूं तक नहीं बोलता है। शब्दमयी पृथ्वी की निस्तब्धता का अनुमान किया नहीं जा सकता है; लेकिन उस अनंत शून्य जंगल के सूची-भेद्य अंधकार का अनुभव किया जा सकता है। सहसा इस रात के समय की भयानक निस्तब्धता को भेदकर ध्वनि आई-- " मेरा मनोरथ क्या सिद्ध न होगा !....."

इस तरह तीन बार वह निस्तब्ध-अंधकार अलोड़ित हुआ-- 'तुम्हारा क्या प्रण है?'
उत्तर मिला-- "मेरा प्रण ही जीवन-सर्वस्व है?"

प्रति शब्द हुआ-- "जीवन तो तुच्छ है, सब इसका त्याग कर सकते हैं!"

"तब और क्या है....और क्या होना चाहिए?"

उत्तर मिला-- "भक्ति!"

"बंगाल सन् 1176 के गरमी के महीने में एक दिन, पदचिन्ह नामक एक गांव में बड़ी भयानक गरमी थी। गांव घरों से भरा हुआ था, लेकिन मनुष्य दिखाई नहीं देते थे। बाजार में कतार-पर-कतार दुकानें विस्तृत बाजार में लंबी-चौड़ी सड़के, गलियों में सैंकड़ों मिट्टी के पवित्र गृह, बीच-बीच में ऊंची-नीची अट्टालिकाएं थीं। आज सब नीरव है; दुकानदार कहां भागे हुए हैं, कोई पता नहीं। बाजार का दिन है, लेकिन बाजार लगा नहीं है, शून्य है। भिक्षा का दिन है, लेकिन भिक्षुक बाहर दिखाई नहीं पड़ते। जुलाहे अपने करघे बंद कर घर में पड़े रो रहे हैं। व्यवसायी अपना रोजगार भूलकर बच्चों को गोद में लेकर विह्वल हैं। दाताओं ने दान बंद कर दिया है, अध्यापकों ने पाठशाला बंद कर दी है, शायद बच्चे भी साहसपूर्वक रोते नहीं हैं। राजपथ पर भीड़ नहीं दिखाई

देती, सरोवर पर स्नानार्थियों की भीड़ नहीं है, गृह-द्वार पर मनुष्य दिखाई नहीं पड़ते हैं, वृक्षों पर पक्षी दिखाई नहीं पड़ते, चरनेवाली गौओं के दर्शन मिलते नहीं हैं, केवल श्मशान में स्यार और कुत्ते हैं, एक बहुत बड़ी आट्टालिका है, उसकी ऊंची चहारदीवारी और गगन-चुंबी गुंबद दूर से दिखाई पड़ते हैं। वह अट्टालिका उस गृह-जंगल में शैल-शिखर-सी दिखाई पड़ती है। उसकी शोभा का क्या कहना है - लेकिन उसके दरवाजे बंद हैं, गृह मनुष्य-समागम से शून्य है, वायु-प्रवेश में भी असुविधा है। उस घर के अंदर दिन-दोपहर के समय अंधेरा है; अंधकार में रात के समय एक कमरे में, फूल ले हुए दो पुष्पो की तरह एक दंपति बैठे हुए चिंतामग्न हैं। उनके सामने अकाल का भीषण रूप है।

1174 में फसल अच्छी नहीं हुई, अतः ग्यारह सौ पचहत्तर में अकाल आ पड़ा- भारतवासियों पर संकट आया। लेकिन इस पर भी शासकों ने पैसा-पैसा, कौड़ी-कौड़ी वसूल कर ली। दरिद्र जनता ने कौड़ी-कौड़ी करके मालगुजारी अदा कर दिन में एक ही बार भोजन किया। ग्यारह सौ पचहत्तर बंगाल की बरसात में अच्छी वर्षा हुई। लोगो ने समझा कि शायद देवता प्रसन्न हुए। आनंद में फिर मठ-मंदिरों में गाना-बजाना शुरू हुआ, किसान की स्त्री ने अपने पति से चांदी के पाजेब के लिए फिर तकाजा शुरू किया। लेकिन अकस्मात् आश्विन मास में फिर देवता विमुख हो गए। व्रत-कार्तिक में एक बूंद भी बरसात न हुई। खेतों में धान के पौधे सूखकर खंखड़ हो गए। जिसके दो-एक बीघे में धान हुआ भी तो राजा ने अपनी सेना के लिए उसे खरीद लिया, जनता भोजन पा न सकी। पहले एक संध्या को उपवास हुआ, फिर एक समय भी आधा पेट भोजन उन मिलने लगा, इसका बाद दो-दो संध्या उपवास होने लगा। चैत में जो कुछ फसल हुई वह किसी के एक ग्रास भर को भी न हुई। लेकिन मालगुजारी के अफसर मुहम्मद रजा खां ने मन में सोचा कि यही समय है, मेरे तपने का। एकदम उसने दश प्रतिशत मालगुजारी बढ़ा दी। बंगाल में घर-घर कोहराम मच गया।

पहले लोगो ने भीख मांगना शुरू किया, इसके बाद कौन भिक्षा देता है? उपवास शुरू हो गया। फिर जनता रोगाक्रांत होने लगी। गो, बैल, हल बेचे गए, बीज के लिए संचित अन्न खा गए, घर-बार बेचा, खेती-बारी बेची। इसके बाद लोगो ने लड़कियां बेचना शुरू किया, फिर लड़के बेचे जाने लगे, इसको बाद गृहलक्ष्मियों का विक्रय प्रारंभ हुआ। लेकिन इसके बाद, लड़की, लड़के औरते कौन खरीदता? बेचना सब चाहते थे लेकिन खरीददार कोई नहीं। खाद्य के अभाव में लोग पेड़ों के पत्ते खाने लगे, घास खाना शुरू किया, नरम टहनियां खाने लगे। छोटी जाति की जनता और जंगली लोग कुत्ते, बिल्ली, चूहे खाने लगे। बहुतेरे लोग भागे, वे लोग विदेश में जाकर अनाहार से मरे। जो नहीं भागे, वे अखाद्य खाकर, उपवास और रोग से जर्जर हो मरने लगे।

रोग को भी अवसर मिला- ज्वर, हैजा, क्षय, चेचक फैल पड़ा। विशेषतः चेचक का बड़ा प्रसार हुआ। घर-घर लोग महामारी से मरने लगे। कौन किसे जल देता है - कौन किसे छूता? कोई किसी की चिकित्सा नहीं करता, कोई किसी को नहीं देखता था। मर जाने पर शव कोई उठाकर फेकता नहीं था। अति रमणीय गृह-स्थान आप ही सड़कर बदबू करने लगे। जिस घर में एक बार चेचक हुआ, रोगी को छोड़कर घरवाले भाग गए।

महेंद्र सिंह पदचिन्ह के बड़े धनी व्यक्ति हैं -- लेकिन आज धनी-गरीब सब बराबर हैं। इस दुःखपूर्ण अकाल के समय रोगी होकर उसके आत्मीय-स्वजन, दासी-दास सभी चले गए हैं। कोई मर गया, कोई भाग गया। उस वृहत परिवार में उनकी स्त्री, वे और गोद में एक शिशु-कन्या मात्र रह गई हैं। इन्हीं लोगो की बात कह रहा हूँ।

उनकी भार्या कल्याणी ने चिंता छोड़कर गोशाला में जाकर गाय दुही। इसके बाद दूध गर्म कर कन्या को पिलाया और गऊ को घास खाने के लिए डाल दिया। वह लौटकर जब काई तो महेन्द्र ने कहा-“इस तरह कितने

दिन चलेगा?”

कल्याणी बोली-- “ज्यादा दिन नहीं ! जितने दिन चले, जितने दिन मैं चला पाती हूँ, चला रही हूँ। इसके बाद तुम लड़की को लेकर शहर चले जाना।”

महेद्र-- “अगर शहर ही चलना है तो तुम्हें ही इतनी तकलीफ क्यों दी जाय? चलो न, अभी चले !”

इसके बाद दोनो अनेक तर्क-वितर्क हुए।

कल्याणी-- “शहर में जाने से क्या विशेष उपकार होगा?”

महेद्र-- “वह स्थान भी शायद ऐसे ही जन शून्य, प्राणरक्षा के उपाय से रहित है”

कल्याणी-- “मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार या कलकत्ता जाने से प्राणरक्षा हो सकेगी। इस स्थान से तो त्याग देना हर तरह से उचित है?”

महेद्र ने कहा-- “यह घर बहुत दिनों से वंशानुक्रम से संचित धन से परिपूर्ण है, इन्हे तो चोर लूट ले जाएंगे।”

कल्याणी-- “यदि वह लोग लूटने के लिए आएँ तो क्या हम दो जन रक्षा कर सकते हैं? प्राण ही न रहा तो धन कौन भोगेगा? चलो, अभी से ही सब बंद-संद करके चल चले। अगर जिंदा रह गए तो फिर आकर भोग करेगे।”

महेद्र ने पूछा-- “क्या तुम राह चल सकोगी? कहार सब मर ही गए हैं। बैल है तो गाड़ी नहीं है और गाड़ी है तो बैल नहीं है।”

कल्याणी -- “तुम चिंता न करो, मैं पैदल चलूंगी।”

कल्याणी ने मन-ही-मन निश्चय किया-- न होगा, राह में मरकर गिर पड़ूंगी; यह दोनो जन तो बचे रहेगे।

दूसरे दिन सबेरे, साथ में कुछ धन लेकर घर-द्वार में ताला बंद कर, गायों को मुक्त कर और कन्या को गोद में लेकर दोनो जन राजधानी के लिए चल पड़े। यात्रा के समय महेद्र ने कहा-- “राह बड़ी भयानक है। कदम-कदम पर डाकू और लुटेरे छिपे हैं; खाली हाथ जाना उचित नहीं है।” यह कहकर महेद्र ने फिर घर में वापस जाकर बंदूक, गोली बारूद साथ में ले ली।

यह देखकर कल्याणी ने कहा-- “अगर अस्त्र की बात याद की है तो जरा लड़की को गोद में सम्हाल लो, मैं भी हथियार ले लूँ” यह कहकर कल्याणी ने लड़की महेद्र की गोद में देकर घर के भीतर प्रवेश किया। महेद्र ने पूछा-- “तुम कौन-सा हथियार लोगी?”

कल्याणी ने घर में जाकर विष की एक डिब्बिया अपने कपड़ों के अंदर छिपा ली।

जेठ का महीना है। भयानक गर्मी से पृथ्वी अग्रिमय हो रही है; हवा में आग की लपट दौड़ रही है, आकाश गरम तवे की तरह जल रहा है, राह की धूल आग की चिनगारी बन गई है। कल्याणी के शरीर से पसीने की धार बहने लगी; कभी पीपल के नीचे, कभी बड़ के नीचे, कभी खजूर के नीचे छाया देखकर तिलमिलाती हुई बैठ जाती है। सूखे हुए तालाबों का कीचड़ से सना मैला जल पीकर वे लोग राह चलने लगे। लड़की महेद्र की गोद में है-- समय समय पर वे उसे पंखा हांक देते हैं। कभी घने हरे पत्तों से दाएं, सुगंधित फूलों वाले वृक्ष से लिपटी हुई लता की छाया में दोनो जन बैठकर विराम करते हैं। महेद्र ने कल्याणी को इतना सहनशील देखकर आश्चर्य किया। पास के ही एक जलाशय से वस्त्र को जल से तर कर महेद्र ने उससे कन्या और पत्नी का जलता माथा और मुंह धोकर कुछ शांत किया।

इससे कल्याणी कुछ आश्वस्त अवश्य हुई, लेकिन दोनो ही भूख से बड़े विह्वल हुए। वे लोग तो उसे भी सहने लगे, लेकिन बालिका की भूख-प्यास उनसे बर्दाश्त न हुई, अतः वहां अधिक देर न ठहरकर वे लोग फिर

चल पड़े। उस आग के सागर को पार कर संध्या से पहले वे एक बस्ती में पहुंचे। महेन्द्र के मन में बड़ी आशा थी कि बस्ती में पहुंचकर वे अपनी पत्नी और कन्या की शीतल जल से तृप्त कर सकेंगे और प्राणरक्षा के निमित्त अपने मुंह में भी कुछ आहार डाल सकेंगे। लेकिन कहां? बस्ती में तो एक भी मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता। बड़े-बड़े घर सूने पड़े हुए हैं, सारे आदमी वहां से भाग गए हैं। इधर-उधर देखकर एक घर के भीतर महेन्द्र ने स्त्री-कन्या को बैठा दिया। बाहर आकर उन्होंने जोरों से पुकारना शुरू किया, लेकिन उन्हें कोई भी उत्तर सुनाई न पड़ा। तब महेन्द्र ने कल्याणी से कहा-“तुम जरा साहसपूर्वक अकेली रहो; देखूं शायद कहीं कोई गाय दिखाई दे जाए। भगवान श्रीकृष्ण दया कर दे तो दूध ले आएं।” यह कहकर महेन्द्र एक मिट्टी का बरतन हाथ में लेकर निकल पड़े। बहुतेरे बरतन वही पड़े हुए थे।

महेन्द्र चले गए। कल्याणी अकेली बालिका को लिए हुए प्रायः जनशून्य स्थान में, घर के अंदर अंधकार में पड़ी चारों तरफ देखती रही। उसके मन में भय का संचार हो रहा था। कहीं कोई नहीं, मनुष्य मात्र का कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता है केवल कुत्तों और स्याहों की आवाज सुनाई पड़ जाती है। सोचने लगी-“क्यों उन्हें जाने दिया? न होता, थोड़ी और भूख-प्यास बर्दाश्त करती।” फिर सोचा-“चारों तरफ के दरवाजे बंद कर दूं।” लेकिन एक भी दरवाजे में किवाड़ दिखाई न दिया। इस तरह चारों तरफ देखते-देखते सहसा उसे सामने के दरवाजे पर एक छाया दिखाई दी-- मनुष्याकृति जैसा, कंकाल मात्र और कोयले की तरह काला, नग्न, विकटाकार मनुष्य जैसा कोई आकार दरवाजे पर खड़ा था। कुछ देर बाद छाया ने मानो अपना एक हाथ उठाया और हाथों की लंबी सूखी उंगलियों से संकेत कर किसी को अपने पास बुलाया। कल्याणी का प्राण सूख गया। इसके बाद वैसी ही एक छाया और- सूखी-काली, दीर्घाकार, नग्न- पहली छाया के पास आकर खड़ी हो गई। इसके बाद ही एक और एक और..... इस तरह कितने ही पिशाच आकर घर के अंदर प्रवेश करने लगे। वहां का एकांत श्मशान की तरह भयंकर दिखाई देने लगा। वह सब प्रेत जैसी मूर्तियां कल्याणी और उसकी कन्या को घेरकर खड़ी हो गईं- देखकर कल्याणी भय से मूर्छित हो गई। काले नरककालों जैसे पुरुष कल्याणी और उसकी कन्या को उठाकर बाहर निकले और बस्ती पार कर एक जंगल में घुस गए।

कुछ देर बाद महेन्द्र उस हंडिया में दूध लिए हुए वहां आए। उन्होंने देखा कि वहां कोई नहीं है। इधर-उधर खोजा; पहले कन्या का नाम और फिर स्त्री का नाम लेकर जोर-जोर से पुकारने लगे। लेकिन न तो कोई उत्तर मिला और न कुछ पता ही लगा।

जिस वन में डाकू कल्याणी को लेकर घुसे, वह वन बड़ा ही मनोहर था। यहां रोशनी नहीं कि शोभा दिखाई दे, ऐसी आंखें भी नहीं कि दरिद्र के हृदय के सौंदर्य की तरह उस वन का सौंदर्य भी देख सकें। देश में आहार द्रव्य रहे या न रहे- वन में फूल हैं; फूलों की सुगंध से मानो उस अंधकार में प्रकाश हो रहा है। बीच की साफ-सुकोमल और पुष्पावृत जमीन पर डाकूओं ने कल्याणी और उसकी कन्या को उतारा और सब उन्हें घेरकर बैठ गए। इसके बाद उन सब में यह बहस चली कि इन लोगों का क्या किया जाए? कल्याणी को जो कुछ गहने थे, उन्हें डाकूओं ने पहले ही हस्तगत कर लिया। एक दल उसके हिस्से-बखरे में व्यस्त हो गया। गहनो के बंट जाने पर एक डाकू ने कहा-“हम लोग सोना-चांदी लेकर क्या करेंगे? एक गहना लेकर कोई मुझे भोजन दे, भूख से प्राण जाते हैं-आज सबेरे केवल पत्ते खाए हैं।”

एक के यह करने पर सभी इसी तरह हल्ला मचाने लगे- ‘भारत दो, हम भूख से मर रहे हैं, सोना-चांदी नहीं चाहते।’... दलपति उन्हें शांत करने लगा, लेकिन कौन सुनता है; क्रमशः ऊंचे स्वर में बातें शुरू हुईं, फिर गाली-गलौच शुरू हुई, मार-पीट की भी तैयारी होने लगी। जिसे-जिसे हिस्से में गहने मिले थे, वे लोग

अपने-अपने हिस्से के गहने खींच-खींचकर दलपति के शरीर पर मारने लगे। दलपति ने भी दो-एक को मारा। इस पर सब मिलकर आक्रमण कर दलपति पर आघात करने लगे। दलपति अनाहार से कमजोर और अधमरा तो आप ही था, दो-चार आधार मे ही गिरकर मर गया। उन भूखे, पीड़ित, उत्तेजित और दयाशून्य डाकुओ मे से एक ने कहा--“स्यार का मांस खा चुके हैं, भूख से प्राण जा रहा है, आओ भाई आज इसी साले को खा ले।” इस पर सबने मिलकर “जयकाली” कहकर जयघोष किया--“जय काली! आज नर-मांस खाएंगे।” यह कहकर वह सब नरकंकाल रूपधारी खिलखिलाकर हंस पड़े और तालियां बजाते हुए नाचने लगे। एक दलपति के शरीर को भूनने के लिए आग जलाने का इंतजाम करने लगा। लता-डालियां और पत्ते संग्रह कर, उसने चकमक पत्थर द्वारा आग पैदा कर उसे धधकाया; धधक कर आग जल उठी। आग की लपट के पास के आम, खजूर, पनस, नीबू आदि के वृक्षो के कोमल हरे पत्ते चमकने लगे। कहीं पत्ते जलने लगे, कहीं घास पर रोशनी से हरियाली हुई तो कहीं अंधेरा और गाढ़ा हो गया। आग जल जाने पर कुछ लोग दलपति के कंकाल को आग में फेकने के लिए घसीटकर लाने लगे।

इसी समय एक बोल उठा--“ठहरो, ठहरो! अगर यह मांस ही खाकर आज भूख मिटानी है, तो इस सूखे नरकंकाल को न भूनकर, आओ इस कोमल लड़की को ही भूनकर खाया जाए”

एक बोला--“जो हो, भैया ! एक को भूनो ! हम तो भूख से मर रहे हैं।” इस पर सबने लोलुप दृष्टि से उधर देखा, जिधर अपनी कन्या को लिए हुए कल्याणी पड़ी थी। उस सबने देखा कि वह स्थान सूना था, न कन्या थी और न माता ही। डाकुओ के आपसी विवाद और मारपीट के समय सुयोग पाकर कल्याणी गोद में बच्ची को चिपकाए वन के भीतर भाग गई। शिकार को भागा देखकर वह प्रेत-दल मार-मार करता हुआ चारों तरफ उन्हे पकड़ने के लिए दौड़ पड़ा। अवस्था विशेष में मनुष्य पशुमात्र रह जाता है।

जंगल के भीतर घनघोर अंधकार है। कल्याणी को उधर राह मिलना मुश्किल हो गया। वृक्ष-लताओ के झुंमुट के कारण एक तो राह कठिन, दूसरे रात का घना अंधेरा। कांटों से विंधती हुई कल्याणी उन आदमखोरो से बचने के लिए भागी जा रही थी। बेचारी कोमल लड़की को भी कांटे लग रहे थे। अबोध बालिका गोद में चीखकर रोने लगी; उसका रोना सुनकर दस्युदल और चीत्कार करने लगा। फिर भी, कल्याणी पागलो की तरह जंगल में तीर की तरह घुसती भागी जा रही थी। थोड़ी ही देर में चंद्रोदय हुआ। अब तक कल्याणी के मन में भरोसा था कि अंधेरे में नर-पिशाच उसे देख न सकेगे, कुछ देर परेशान होकर पीछा छोड़कर लौट जाएंगे, लेकिन अब चांद का प्रकाश फैलने से वह अधीर हो उठी। चंद्रमा ने आकाश में ऊंचे उठकर वन पर अपना रूपहला आवरण पैला दिया, जंगल का भीतरी हिस्सा अंधेरे में चांदनी से चमक उठा- अंधकार में भी एक तरह की उज्वलता फैल गई- चांदनी वन के भीतर छिद्रों से घुसकर आंखमिचौनी करने लगी। चंद्रमा जैसे-जैसे ऊपर उठने लगा, वैसे-वैसे प्रकाश फैलने लगा जंग को अंधकार अपने में समेटने लगा। कल्याणी पुत्री को गोद में लिए हुए और गहन वन में जाकर छिपने लगी। उजाला पाकर दस्युदल और अधिक शोर मचाते हुए दौड़-धूप कर खोज करने लगे। कन्या भी शोर सुनकर और जोर से चिल्लाने लगी। अब कल्याणी भी थककर चूर हो गई थी; वह भागना छोड़कर वटवृक्ष के नीचे साफ जगह देखकर कोमल पत्तियों पर बैठ गई और भगवान को बुलाने लगी--“कहां हो तुम? जिनकी मैं नित्य पूजा करती थी, नित्य नमस्कार करती थी, जिनके एकमात्र भरोसे पर इस जंगल में घुसने का साहस कर सकी.....” ...कहां हो, हे मधुसूदन!” इस समय भय और भक्ति की प्रगाढ़ता से, भूख-प्यास से थकावट से कल्याणी धीरे अचेत होने लगी; लेकिन आंतरिक चैतन्य से उसने सुना, अंतरिक्ष में स्वर्गीय गीत हो रहा है-

“हरे मुरारे! मधुकैटभारे! गोपाल, गोविंद मुकुंद प्यारे! हरे मुरारे मधुकैटभारे!.....”

कल्याणी बचपन से पुराणो का वर्णन सुनती आती थी कि देवर्षि नारद हाथों में वीणा लिए हुए आकाश पथ से भुवन-भ्रमण किया करते हैं- उसके हृदय में वही कल्पना जागरित होने लगी। मन-ही-मन वह देखने लगी- शुभ्र शरीर, शुभ्रवेश, शुभ्रकेश, शुभ्रवसन महामति महामुनि वीणा लिए हुए, चांदनी से चमकते आकाश की राह पर गाते आ रहे हैं।

“हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.....”

क्रमशः गीत निकट आता हुआ, और भी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा-

“हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.....”

क्रमशः और भी निकट, और भी स्पष्ट-

“हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.....”

अंत में कल्याणी के मस्तक पर, वनस्थली में प्रतिध्वनित होता हुआ गीत होने लगा-

“हरे मुरारे! मधुकैटभारे!.....”

कल्याणी ने अपनी आंखें खोली। धुंधले अंधेरे की चांदी में उसने देखा- सामने वही शुभ्र शरीर, शुभ्रवेश, शुभ्रकेश, शुभ्रवसन ऋषिमूर्ति खड़ी है। विकृत मस्तिष्क और अर्धचेतन अवस्था में कल्याणी ने मन में सोचा- प्रणाम करूं, लेकिन सिर झुकाने से पहले ही वह फिर अचेत हो गयी और गिर पड़ी।

इसी वन में एक बहुत विस्तृत भूमि पर ठोस पत्थरों से निर्मित एक बहुत बड़ा मठ है। पुरातत्त्ववेत्ता उसे देखकर कह सकते हैं कि पूर्वकाल में यह बौद्धों का विहार था- इसके बाद हिंदुओं का मठ हो गया है। दो खंडों में अट्टालिकाएं बनी हैं, उसमें अनेक देव-मंदिर और सामने नाट्यमंदिर है। वह समूचा मठ चहारदीवारी से घिरा हुआ है और बाहरी हिस्सा ऊंचे-ऊंचे सघन वृक्षों से इस तरह आच्छादित है कि दिन में समीप जाकर भी कोई यह नहीं जान सकता कि यहां इतना बड़ा मठ है। यो तो प्राचीन होने के कारण मठ की दीवारों अनेक स्थानों से टूट-फूट गई हैं, लेकिन दिन में देखने में से साफ पता लगेगा कि अभी हाल ही में उसे बनाया गया है। देखने से तो यही जान पड़ेगा कि इस दुर्भेद्य वन के अंदर कोई मनुष्य रहता न होगा। उस अट्टालिका की एक कोठरी में लकड़ी का बहुत बड़ा कुन्दा जल रहा था। आंख खुलने पर कल्याणी ने देखा कि सामने ही वह ऋषि महात्मा बैठे हैं। कल्याणी बड़े आश्चर्य से चारों तरफ देखने लगी। अभी उसकी स्मृति पूरी तरह जागी नहीं। यह देखकर महापुरुष ने कहा- “बेटी! यह देवताओं का मंदिर है, डरना नहीं। थोड़ा दूध है, उसे पियो; फिर तुमसे बातें होगी।”

पहले तो कल्याणी कुछ समझ नहीं सकती, लेकिन धीरे-धीरे उसके हृदय में जब धीरज हुआ तो उसने उठकर अपने गले में आंचल डालकर, जमीन से मस्तक लगाकर प्रणाम किया। महात्माजी ने सुमंगल आशीर्वाद देकर दूसरे कमरे से एक सुगंधित मिट्टी का बरतन लाकर उसमें दूध गरम किया। दूध के गरम हो जाने पर उसे कल्याणी को देकर बोले- “बेटी! दूध कन्या को भी पिलाओ, स्वयं भी पियो, उसके बाद बातें करना।” कल्याणी संतुष्ट हृदय से कन्या को दूध पिलाने लगी। इसके बाद उस महात्मा ने कहा- “मैं जब तक न आऊं, कोई चिंता न करना।” यह कहकर कमरे के बाहर चले गए। कुछ देर बाद उन्होंने लौटकर देखा कि कल्याणी ने कन्या को तो दूध पिला दिया है, लेकिन स्वयं कुछ नहीं पिया। जो दूध रखा हुआ था, उसमें से बहुत थोड़ा खर्च हुआ था। इस पर महात्मा ने कहा- “बेटी! तुमने दूध नहीं पिया? मैं फिर बाहर जाता हूँ; जब तक तुम दूध न पियोगी, मैं वापस न आऊंगा।”

वह ऋषितुल्य महात्मा यह कहकर बाहर जा रहे थे; इसी समय कल्याणी फिर प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़ी हो गई।

महात्मा ने पूछा-“क्या कहना चाहती हो?”

कल्याणी ने हाथ जोड़े हुए कहा- “मुझे दूध पीने की आज्ञा न दे। उसमें एक बाधा है, मैं पी न सकूंगी।.....”

इस पर महात्मा ने दुःखी हृदय से कहा- “क्या बाधा है? मैं ब्रह्मचारी हूँ, तुम मेरी कन्या के समान हो; ऐसी कौन बात हो सकती है जो मुझसे कह न सको? मैं जब तुम्हें वन से उठाकर यहां ले आया, तो तुम अत्यंत भूख प्यास से अवसन्न थी, तुम यदि दूध न पियोगी तो कैसे बचोगी?”

इस पर कल्याणी ने भरी आंखें और भरे गले से कहा- “आप देवता हैं, आपसे अवश्य निवेदन करूंगी - अभी तक मेरे स्वामी ने कुछ नहीं खाया है, उनसे मुलाकात हुए बिना या संवाद मिले बिना मैं भोजन न कर सकूंगी। मैं कैसे खाऊंगी....”

ब्रह्मचारी ने पूछा- “तुम्हारे पतिदेव कहां हैं?”

कल्याणी बोली- “यह मुझे मालूम नहीं- दूध की खोज में उनके बाहर निकलने पर ही डाकू मुझे उठा ले गए” इस पर ब्रह्मचारी ने एक-एक बात पूछकर कल्याणी से उसके पति का सारा हाल मालूम कर लिया। कल्याणी ने पति का नाम नहीं बताया, बता भी नहीं सकती थी, किंतु अन्याय परिचयो से ब्रह्मचारी समझ गए। उन्होने पूछा- “तुम्ही महेद्र की पी हो?” इसका कोई उत्तर न देकर कल्याणी सिर झुका कर, जलती हुई आग में लकड़ी लगाने लगी। ब्रह्मचारी ने समझकर कहा- “तुम मेरी बात मानो, मैं तुम्हारे पति की खोज करता हूँ। लेकिन जब तक दूध न पियोगी, मैं न जाऊंगा?”

कल्याणी पूछा- “यहां थोड़ा जल मिलेगा?”

ब्रह्मचारी ने जल का कलश दिखा दिया। कल्याणी ने अंजलि रोपी, ब्रह्मचारी ने जल डाल दिया। कल्याणी ने उस जल की अंजलि को महात्मा के चरणों के पास ले जाकर कहा- “इसमें कृपा कर पदरेणु दे दे।” महात्मा के अंगूठे द्वारा छू देने पर कल्याणी ने उसे पीकर कहा- “मैंने अमृतपान कर लिया है। अब और कुछ खाने-पीने को न कहिए। जब तक पतिदेव का पता न लगेगा मैं कुछ न खाऊंगी।”

इस पर ब्रह्मचारी ने संतुष्ट होकर कहा- “तुम इसी देवस्थान में रहो। मैं तुम्हारे पति की खोज में जाता हूँ।” रात काफी बीत चुकी है। चंद्रमा माथे के ऊपर है। पूर्ण चंद्र नहीं है, इसलिए चांदनी भी चटकीली नहीं- फीकी है। जंगल के बहुत बड़े हिस्से पर अंधकार में धुंधली रोशनी पड़ रही है। इस प्रकाश में मठ के इस पार से दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता। मठ मानो एकदम जनशून्य है- देखने से यही मालूम होता है। इस मठ के समीप से मुर्शिदाबाद और कलकत्ते को राह जाती है। राह के किनारे ही एक छोटी पहाड़ी है, जिस पर आम के अनेक पेड़ हैं। वृक्षों की चोटी चांदनी से चमकती हुई कांप रही है, वृक्षों के नीचे पत्थर पर पड़नेवाली छाया भी कांप रही है। ब्रह्मचारी उसी पहाड़ी के शिखर पर चढ़कर न जाने क्या सुनने लगे। नहीं कहा जा सकता कि वे क्या सुन रहे थे। इस अनंत जंगल में पूर्ण शांति थी- कहीं ऐसे ही पत्तों की मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी। पहाड़ की तराई में एक जगह भयानक जंगल है। ऊपर पहाड़ नीचे जंगल बीच में वह राह है। नहीं कह सकते कि उधर कैसी आवाज हुई जिसे सुनकर ब्रह्मचारी उसी ओर चल पड़े। उन्होने भयानक जंगल में प्रवेश कर देखा कि वहां एक घने स्थान में वृक्षों की छाया में बहुतेरे आदमी बैठे हैं। वे सब मनुष्य लंबे, काले, और सशस्त्र थे पेड़ों की छाया को भेदकर आनेवाली चांदनी उनके शस्त्रों को चमका रही थी। ऐसे ही दो सौ आदमी बैठे हैं और सब शांत, चुप हैं। ब्रह्मचारी उनके बीच में जाकर खड़े हो गए और उन्होने कुछ इशारा कर दिया,

जिससे कोई भी उठकर खड़ा न हुआ। इसके बाद वह तपस्वी महात्मा एक तरफ से लोगो को चेहरा गौर से देखते हुए आगे बढ़ने लगे, जैसे किसी को खोजते हो। खोजते-खोजते अन्त में वह पुरुष मिला और ब्रह्मचारी के उसका अंग स्पर्श कर इशारा करते ही वह उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मचारी उसे साथ लेकर दूर आड़ में चले गए। वह पुरुष युवक और बलिष्ठ था- लंबे घुंघराले बाल कंधे पर लहरा रहे थे। पुरुष अतीव सुंदर था। गैरिक वस्त्रधारी तथा चंदनचर्चित अंगवाले ब्रह्मचारी ने उस पुरुष से कहा- “भवानंद! महेद्र सिंह की कुछ खबर मिली है?”

इस पर भवानंद ने कहाझ्रस्-“आज सबेरे महेद्रसिंह अपनी पी और कन्या के साथ गृह त्यागकर बाहर निकले हैं-बस्ती में.....”

इतना सुनते ही ब्रह्मचारी ने बात काटकर कहा-“बस्ती में जो घटना हुई है, मैं जानता हूँ। किसने ऐसा किया?”

भवानंद-“गांव के ही किसान लोग थे। इस समय तो गांवो के किसान भी पेट की ज्वाला से डाकू हो गए हैं। आजकल कौन डाकू नहीं है? हम लोगो ने भी आज लूट की है- दारोगा साहब के लिए दो मन चावल जा रहा था, छीनकर वैष्णवो को भोग लगा दिया है।”

ब्रह्मचारी ने कहा-“चोरो के हाथ से तो हमने स्त्री-कन्या का उद्धार कर लिया है। इस समय उन्हें मठ में बैठा आया हूँ। अब यह भार तुम्हारे ऊपर है कि महेद्र को खोजकर उनकी स्त्री-कन्या उनके हवाले कर दो। यहां जीवानंद के रहने से काम हो जाएगा।”

भवानंद ने स्वीकार कर लिया। तब ब्रह्मचारी दूसरी जगह चले गए। बस्ती में बैठे रहने और सोचते रहने का कोई प्रतिफल न होगा- यह सोचकर महेद्र वहां से उठे। नगर में जाकर राजपुरुषो की सहायता से स्त्री-कन्या का पता लगवाएं- यह सोचकर महेद्र उसी तरफ चले। कुछ दूर जाकर राह में उन्होंने देखा कि कितनी ही बैलगाड़ियो को घेरकर बहुतेरे सिपाही चले आ रहे हैं।

बंगला सन् 1173 में बंगाल प्रदेश अंगरेजो के शासनाधीन नहीं हुआ था। अंगरेज उस समय बंगाल के दीवान ही थे। वे खजाने का रुपया वसूलते थे, लेकिन तब तक बंगालियो की रक्षा का भार उन्होंने अपने ऊपर लिया न था। उस समय लगान की वसूली का भार अंगरेजो पर था, और कुल सम्पत्ति की रक्षा का भार पापिष्ठ, नराधम, विश्वासघातक, मनुष्य-कुलकलंक मीरजाफर पर था। मीरजाफर आत्मरक्षा में ही अक्षम था, तो बंगाल प्रदेश की रक्षा कैसे कर सकता था? मीरजाफर सिर्फ अफीम पीता था और सोता था, अंगरेज ही अपने जिम्मे का सारा कार्य करते थे। बंगाली रोते थे और कंगाल हुए जाते थे।

अतः बंगाल का कर अंगरेजो को प्राप्य था, लेकिन शासन का भार नवाब पर था। जहां-जहां अंगरेज अपने प्राप्य कर की स्वयं अदायगी कराते थे, वहां-वहा उन्होंने अपनी तरफ से कलेक्टर नियुक्त कर दिए थे। लेकिन मालगुजारी प्राप्त होने पर कलकत्ते जाती थी। जनता भूख से चाहे मर जाए, लेकिन मालगुजारी देनी ही पड़ती थी। फिर भी मालगुजारी पूरी तरह वसूल नहीं हुई थी- कारण, माता-वसुमती के बिना धन-प्रसव किए, जनता अपने पास के कैसे गढ़कर दे सकती थी? जो हो, जो कुछ प्राप्त हुआ था, उसे गाड़ियो पर लादकर सिपाहियो के पहरे में कलकत्ते भेजा जा रहा था- धन कंपनी के खजाने में जमा होता। आजकल डाकुओ का उत्पात बहुत बढ़ गया है, इसीलिए पचास सशस्त्र सिपाही गाड़ी के आगे-पीछे संगीन खड़ी किए, कतार में चल रहे थे : उनका अध्यक्ष एक गोरा था जो सबसे पीछे घोड़े पर था। गरमी की भयानकता के कारण सिपाही दिन में न चलकर रात को सफर करते थे। चलते-चलते उन गाड़ियो और सिपाहियो के कारण महेद्र की राह रुक गई। इस तरह राह रुकी होने के कारण थोड़ी देर के लिए महेद्र सड़क के किनारे खड़े हो गए। फिर भी सिपाहियो के

शरीर से धक्का लग सकता था, और झगड़ा बचाने के ख्याल से वे कुछ हटकर जंगल के किनारे खड़े हो गए।

इसी समय एक सिपाही बोला--“यह देखो, एक डाकू भागता है।” महेद्र के हाथ में बंदूक देखकर उसका विश्वास टूट हो गया। वह दौड़कर पहुंचा और एकाएक महेद्र का गला पकड़कर साले चोर! कहकर उन्हें एक घूंसा जमाया और बंदूक छीन ली। खाली हाथ महेद्र ने केवल घूंसे का जवाब घूंसे से दिया। महेद्र को अचानक इस बर्ताव पर क्रोध आ गया था, यह कहना ही व्यर्थ है! घूंसा खाकर सिपाही चक्कर खाकर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। इस पर अन्य चार सिपाहियों ने आकर महेद्र को पकड़ लिया और उन्हें उस गोरे सेनापति के पास ले गए। अभियोग लगाया कि इसने एक सिपाही का खून किया है। गोरा साहब पाइप से तमाखू पी रहा था, नशे के झोके में बोला--“साले को पकड़कर शादी कर लो।” सिपाही हक्क-बक्क हो रहे थे कि बंदूकधारी डाकू से सिपाही कैसे शादी कर ले? लेकिन नशा उतरने पर साहब का मत बदल सकता है कि शादी कैसे होगी- यही विचार कर सिपाहियों ने एक रस्सी लेकर महेद्र के हाथ-पैर बांध दिए और गाड़ी पर डाल दिया। महेद्र ने सोचा कि इतने सिपाहियों के रहते जो लगाना व्यर्थ है, इसका कोई फल न होगा; दूसरे स्त्री-कन्या के गायब होने के कारण महेद्र बहुत दुःखी और निराश थे; सोचा-- अच्छा है, मर जाना ही अच्छा है! सिपाहियों ने उन्हें गाड़ी के बल्ले से अच्छी तरह बांध दिया और इसके बाद धीरे-धीरे चाल से वे लोग फिर पहले की तरह चलने लगे।

ब्रह्मचारी की आज्ञा पाकर भवानंद धीरे-धीरे हरिकीर्तन करते हुए उस बस्ती की तरफ चले, जहां महेद्र का कन्या-पत्नी से वियोग हुआ था। उन्होंने विवेचन किया कि महेद्र का पता वही से लगना संभव है। उस समय अंग्रेजों की बनवायी हुई आधुनिक राहें नहीं थी। किसी भी नगर से कलकत्ते जाने के लिए मुगल-सम्राटों की बनायी राहें ही जाना पड़ती थी। महेद्र भी पदचिह्न से नगर जाने के लिए दक्षिण से उत्तर जा रहे थे। भवानंद ताल-पहाड़ से जिस बस्ती की तरफ आगे बढ़े, वह भी दक्षिण से उत्तर पड़ती थी। जाते-जाते उनका भी उन धन-रक्षक सिपाहियों से साक्षात् हो गया। भवानंद भी सिपाहियों की बगल से निकले। एक तो सिपाहियों का विश्वास था कि इस खजाने को लूटने के लिए डाकू अवश्य कोशिश करेंगे, उस पर राह में एक डाकू-महेद्र को गिरफ्तार कर चुके थे, अतः भवानंद को भी राह में पाकर उनका विश्वास हो गया कि यह भी डाकू है। अतएव तुरंत उन सबने भवानंद को भी पकड़ लिया। भवानंद ने मुस्करा कर कहा--“ऐसा क्यों भाई?”

सिपाही बोला--“तुम साले डाकू हो!”

भवानंद--“देख तो रहे तो, गेरुआ कपड़ा पहने मैं ब्रह्मचारी हूँ..... डाकू क्या मेरे जैसे होते हैं?”

सिपाही--“बहुतेरे साले ब्रह्मचारी-संन्यासी डकैत रहते हैं।”

यह कहते हुए सिपाही भवानंद के गले पर धक्का दे खींच लाए। अंधकार में भवानंद की आंखों से आग निकलने लगी, लेकिन उन्होंने और कुछ न कर विनीत भाव से कहा--“हुजूर! आज्ञा करो, क्या करना होगा?”

भवानंद की वाणी से संतुष्ट होकर सिपाही ने कहा--“लो साले! सिर पर यह बोझ लादकर चलो।” यह कहकर सिपाही ने भवानंद के सिर पर एक गठरी लाद दी। यह देख एक दूसरा सिपाही बोला--“नहीं-नहीं भाग जाएगा। इस साले को भी वहां पहलेवाले की तरह बांधकर गाड़ी पर बैठा दो।” इस पर भवानंद को और उत्कंठा हुई कि पहले किसे बांधा है, देखना चाहिए। यह विचार कर भवानंद ने गठरी फेंक दी और पहले सिपाही को एक थप्पड़ जमाया। अतः अब सिपाहियों ने उन्हें भी बांधकर गाड़ी पर महेद्र की बगल में डाल दिया। भवानंद पहचान गए कि यही महेद्रसिंह है।

सिपाही फिर निश्चिंत हो कोलाहल मचाते हुए आगे बढ़े। गाड़ी का पहिया 'घड़-घड़' शब्द करता हुआ घूमने लगा। भवानंद ने अतीव धीमे स्वर में, ताकि महेद्र ही सुन सके, कहा-“महेद्रसिंह! मैं तुम्हें पहचानता हूँ। तुम्हारी सहायता करने के लिए ही यहां आया हूँ। मैं कौन हूँ यह भी तुम्हें सुनने की जरूरत नहीं। मैं जो कहता हूँ, सावधान होकर वही करो! तुम अपने हाथ के बंधन गाड़ी के पहिये के ऊपर रखो।” महेद्र विस्मित हुए, फिर भी उन्होंने बिना कहे-सुने भवानंद के मतानुसार कार्य किया- अंधकार में गाड़ी के चक्के की तरफ जरा खिसककर उन्होंने अपने हाथ के बंधनों को पहिये के ऊपर लगाया। थोड़ी ही देर में उनके हाथ के बंधन कटकर खुल गए। इस तरह बंधन से मुक्त होकर वे चुपचाप गाड़ी पर लेट रहे। भवानंद ने भी उसी तरह अपने को बंधनों से मुक्त किया। दोनों ही चुपचाप लेटे रहे।

जिस जगह जंगल के समीप राज-पथ पर खड़े होकर ब्रह्मचारी ने चारों ओर देखा था उसी राह से इन लोगों को गुजरना था। उस पहाड़ी के निकट पहुंचने पर सिपाहियों ने देखा कि एक शिलाखंड पर जंगल के किनारे एक पुरुष खड़ा है। हलकी चांदनी में उस पुरुष का काला शरीर चमकता हुआ देखकर सिपाही बोला-“देखो एक साला और यहां खड़ा है।” इस पर उसे पकड़ने के लिए एक आदमी दौड़ा, लेकिन वह आदमी वही खड़ा रहा, भागा नहीं- पकड़कर हवलदार के पास ले आने पर भी वह व्यक्ति कुछ न बोला। हवलदार ने कहा-“इस साले के सिर पर गठरी लादो!” सिपाहियों के एक भारी गठरी देने पर उसने भी सिर पर ले ली। तब हवलदार पीछे पलटकर गाड़ी के साथ चला। इसी समय एकाएक पिस्तौल चलने की आवाज हुई- हवलदार माथे में गोली खाकर गिर पड़ा।

“इसी साले ने हवलदार को मारा है!” कहकर एक सिपाही ने उस मोटिया का हाथ पकड़ लिया। मोटिये के हाथ में तब तक पिस्तौल थी। मोटिये ने अपने सिर का बोझ फेंककर और तुरंत पलटकर उस सिपाही के माथे पर आघात किया, सिपाही का माथा फट गया और जमीन पर गिर पड़ा। इसी समय “हरि! हरि! हरि!” पुकारता दो सौ व्यक्तियों ने आकर सिपाहियों को घेर लिया। सिपाही गोरे साहब के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। साहब भी डाका पड़ा है- विचार कर तुरंत गाड़ी के पास पहुंचा और सिपाहियों को चौकोर खड़े होने की आज्ञा दी। अंग्रेजों का नशा विपद् के समय नहीं रहता। सिपाहियों के उस तरह खड़े होते ही दूसरी आज्ञा से उन्होंने अपनी-अपनी बंदूके संभाली। इसी समय एकाएक साहब की कमर की तलवार किसी ने छीन ली और फौरन उसने एक बार में साहब का सिर भुट्टे की तरह उड़ा दिया- साहब का धड़ घोड़े से गिरा। फायर करने का हुक्म वह दे न सका। तब लोगों ने देखा कि एक व्यक्ति गाड़ी पर हाथ में नंगी तलवार लिए हुए ललकार रहा है- “मारो, सिपाहियों को मारो.....मारो! साथ ही हरि हरि!” का जय नाद भी करता जाता है। वह व्यक्ति और कोई नहीं भवानंद था।

एकाएक अपने साहब को मरा हुआ देख और अपनी रक्षा के लिए किसी को आज्ञा देते न देखकर सरकारी सिपाही डटकर भी निश्चेष्ट हो गए। इस अवसर पर तेजस्वी डाकुओं ने अपने सिपाहियों को हताहत कर आगे बढ़, गाड़ी पर रखे हुए खजाने पर अधिकार जमा लिया। सरकारी फौजी टुकड़ी भयभीत होकर भागी।

अंत में वह व्यक्ति सामने आया जो दल का नेतृत्व करता था और पहाड़ी पर खड़ा था। उसने आकर भवानंद को गले लगा लिया। भवानंद ने कहा-“भाई जीवानंद! तुम्हारा नाम सार्थक हो?”

इसके बाद अपहृत धन को यथास्थान भेजने का भार जीवानंद पर रहा। वह अपने अनुचरों के साथ खजाना लेकर शीघ्र ही किसी अन्य स्थान में चले गए। भवानंद अकेले खड़े रह गए।

बैलगाड़ी पर से कूदकर एक सिपाही की तलवार छीनकर महेद्र सिंह ने भी चाहा कि युद्ध में योग दे। लेकिन इसी समय उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिया कि युद्ध में लगा हुआ दल और कुछ नहीं, डाकुओ का दल है—धन छीनने के लिए इन लोगो ने सिपाहियो पर आक्रमण किया है। यह विचार कर महेद्र युद्ध से विरत हो दूर जा खड़े हुए। उन्होंने सोचा कि डाकुओ का साथ देने से उन्हें भी दुराचार का भागी बनना पड़ेगा। वे तलवार फेककर धीरे-धीरे वह स्थान त्यागकर जा रहे थे, इसी समय भवानंद उसके पास आकर खड़े हो गए। महेद्र ने पूछा—

“महाशय! आप कौन हैं?”

भवानंद ने कहा—“इससे तुम्हें क्या प्रयोजन है?”

महेद्र—“मेरा कुछ प्रयोजन है— आज आपके द्वारा मैं विशेष उपकृत हुआ हूँ।”

भवानन्द—“मुझे ऐसा नहीं था कि तुम्हें इतना ज्ञान है। हाथों में हथियार रहते हुए भी तुम युद्ध से विरत रहे..... जमींदारों के लड़के घी-दूध का श्राद्ध करना तो जानते हैं, लेकिन काम के समय बंदर बन जाते हैं!”

भवानंद की बात समाप्त होते-न-होते महेद्र घृणा के साथ कहा—“यह तो अपराध है, डकैती है”

भवानंद ने कहा—“हां डकैती! हम लोगो के द्वारा तुम्हारा कुछ उपकार हुआ था, साथ ही और भी कुछ उपकार कर देने की इच्छा है!”

महेद्र—“तुमने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है लेकिन और क्या उपकार करोगे? फिर डाकुओ द्वारा उपकृत होने के बदले अनुपकृत होना ही अच्छा है।”

भवानंद—“उपकार ग्रहण न करो, यह तुम्हारी इच्छा है। यदि इच्छा हो तो मेरे साथ आओ, तुम्हारी स्त्री-कन्या से मुलाकात करा दूंगा!”

महेद्र पलटकर खड़े हो गए, बोले—“क्या कहा?”

भवानंद ने इसका कोई जवाब न देकर पैर बढ़ाया।

अंत में महेद्र भी साथ-साथ आने लगे, साथ ही मन-ही-मन सोचते जाते थे—यह सब कैसे डाकू है?..... स चांदनी रात में दोनों ही जंगल पार करते हुए चले जा रहे थे। महेद्र चुप, शांत, गर्वित और कुछ कौतूहल में भी थे।

सहसा भवानंद ने भिन्न रूप धारण कर लिया। वे अब स्थित-मूर्ति, धीर-प्रवृत्ति सन्यासी न रहे— वह रणनिपुण वीरमूर्ति, अंग्रेज सेनाध्यक्ष का सिर काटने वाला रुद्ररूप अब न रहा। अभी जिस गर्वित भाव से वे महेद्र का तिरस्कार कर रहे थे, अब भवानंद वह न थे— मानो ज्योत्सनामयी, शांतिमयी पृथिवी की तरु-कानन-नद-नदीमय शोभा निरखकर उसके चित्त में विशेष परिवर्तन हो गया हो। चन्द्रोदय होने पर समुद्र मानो हंस उठा। भवानंद हंसमुख, मुखर, प्रियसंभाषी बन गए और बातचीत के लिए बहुत बेचैन हो उठे। भवानंद ने बातचीत करने के अनेक उपाय रचे, लेकिन महेन्द्र चुप ही रहे। तब निरुपाय होकर भवानंद ने गाना शुरू किया—

“वन्दे मातरम्!

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्

शस्यश्यामलां मातरम्.....।”

महेद्र गाना सुनकर कुछ आश्चर्य में आए। वे कुछ समझ न सके— सुजलां, सुफलां, मलयजशीतलां, शस्यश्यामला माता कौन हैं? उन्होंने पूछा—“यह माता कौन हैं?”

कोई उत्तर न देकर भवानंद गाते रहे—

“शुभ्रज्योत्सना पुलकित यामिनीम्

फुल्लकुसुमित द्रुमदल शोभिनीम्

सुहासिनी सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां वरदां मातरम् । ”.....

महेद्र बोले-“यह तो देश है, यह तो मां नहीं है।”

भवानंद ने कहा -“हमलोग दूसरी किसी मां को नहीं मानते। ‘जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी’- हमारी माता, जन्मभूमि ही हमारी जननी है- हमारे न मां हैं, न पिता हैं, न भाई हैं- कुछ नहीं है, स्त्री भी नहीं, घर भी नहीं, मकान भी नहीं, हमारी अगर कोई है तो वही सुजला, सुफला, मलयजसमीरण-शीतला, शस्यश्यामला.....”

अब महेद्र ने समझकर कहा -“तो फिर गाओ!”

भवानंद फिर गाने लगे-

“वन्दे मातरम्!

सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम

शस्यश्यामलां मातरम्.....।”

“शुभ्र ज्योत्सना-पुलकित यामिनीम्

फुल्लकुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्

सुहासिनी सुमधुरभाषिणीम्

सुखदां, वरदां मातरम् ॥

वन्दे मातरम्.....

सप्तकोटिकण्ठ-कलकल निनादकराले,

द्विसप्तकोटि भुजैर्धृत खरकरवाले,

अबला केनो मां तुमि एतो बले!

बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्

रिपुदलवारिणीम् मातरम् ॥ वन्दे.....

तुमी विद्या, तुमी धर्म,

तुमी हरि, तुमी कर्म,

त्वं हि प्राण : शरीरे ।

बाहुते तुमी मां शक्ति,

हृदये तुमी मां भक्ति,

तोमारई प्रतिमा गड़ी मन्दिरे-मन्दिरे ।

त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी,

कमला कमल-दल-विहारिणी,

वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वं

नमामि कमलां, अमलां, अतुलाम,

सुजलां, सुफलां, मातरम्

वन्दे मातरम् ॥

श्यामलां, सरलां, सुस्मितां, भूषिताम्

धरणी, भरणी मातरम् ॥ वन्दे मातरम्...”

महेद्र ने देखा दस्यु गाते-गाते रोने लगा। तब महेद्र ने विस्मय से पूछा- “तुमलोग कौन हो?”

भवानंद ने उत्तर दिया -“हमलोग संतान है।”

महेद्र -“संतान क्या? किसकी संतान है?”

भवानंद -“माता की संतान!”

महेद्र -“ठीक ! तो क्या संतान लोग चोरी-डकैती करके मां की पूजा करते हैं? यह कैसी मातृभक्ति?”

भवानंद -“हम लोग चोरी-डकैती नहीं करते.....”

महेद्र -“अभी तो गाड़ी लूटी है.....?”

भवानंद -“यह क्या चोरी-डकैती है! किसके रुपये लुटे हैं?”

महेद्र -“क्यो ? राजा के !”

भवानंद -“राजा के! वह क्यो इन रुपयो को लेगा- इन रुपयो पर उसका क्या अधिकार है?”

महेद्र -“राजा का राज-भाग।”

भवानंद-“जो राजा राज्य प्रबंध न करे, जनता-जनार्दन की सेवा न करे, वह राजा कैसे हुआ?”

महेद्र -“देखता हूं, तुम लोग किसी दिन फौजी की तोपो के मुंह पर उड़ जाओगे।”

भवानंद -“अनेक साले सिपाहियो को देख चुका हूं, अभी आज भी तो देखा है!”

महेद्र -“अच्छी तरह नहीं देखा, एक दिन देखोगे!”

भवानंद -“सब देख चुका हूं। एक बार से दो बार तो मनुष्य मर नहीं सकता।”

महेद्र -“जान-बूझकर मरने की क्या जरूरत है?”

भवानंद -“महेद्र सिंह! मेरा ख्याल था कि तुम मनुष्यो के समान मनुष्य होगे। लेकिन देखा- जैसे सब हैं, वैसे तुम भी हो- घी-दूध खाकर भी दम नहीं। देखो, सांप मिट्टी में अपने पेट को घसीटता हुआ चलता है- उससे बढ़कर तो शायद हीन कोई न होगा; लेकिन उसके शरीर पर भी पैर रख देने पर वह फन काढ़ लेता है। तुम लोगो का धैर्य

क्या किसी तरह भी नष्ट नहीं होता? देखो, कितने देशी शहर हैं- मगध, मिथिला, काशी, कराची, दिल्ली, काश्मीर- उन जगहो की ऐसी दुर्दशा है? किस देश के मनुष्य भोजन के अभाव में घास खा रहे हैं? किस देश की जनता कांटे खाती है, लता-पत्ता खाती है? किस देश के मनुष्य स्यार, कुत्ते और मुर्दे खाते हैं? आदमी अपने संदूक में धन रखकर भी निश्चित नहीं है- सिंहासन पर शालिग्राम बैठाकर निश्चित नहीं है- घर में बहू-नौकर-मजदूरनी रखकर निश्चित नहीं है! हर देश का राजा अपनी प्रजा की दशा का, भरण-पोषण का ख्याल रखता है; हमारे देश का मुसलमान राजा क्या हमारी रक्षा कर रहा है? धर्म गया, जाति गई, मन गया- अब तो प्राणो पर बाजी आ गई है। इन नशेबाज दाड़ीवालो को बिना भगाए क्या हिंदू हिंदू रह जाएंगे?”

महेद्र -“कैसे भगाओगे?”

भवानंद -“मारकर!”

महेद्र -“तुम अकेले भगाओगे- एक थप्पड़ मारकर क्या?”

भवानंद ने फिर गाया-

“सप्तकोटि कण्ठ कलकल निनादकराले,

द्विसप्तकोटिभुजैर्घृत खरकरवाले,

अबला केनो मां एतो बले।”

महेद्र –“किंतु देखता हूं, तुम तो अकेले हो?”

भवानंद–“क्यो, अभी तो दो सौ आदमियो को देख चुके हो।”

महेद्र–“क्या वे सब संतान है?”

भवानंद–“हां सब संतान है।”

महेद्र–“और कितने लोग है?”

भवानंद–“इसी तरह हजारो है। धीरे-धीरे और बढ़ेगे।”

महेद्र–“बहुत होगा, दस-बीस हो जाओगे- लेकिन क्या इतने से ही मुसलमान भाग जाएंगे? क्या वे सहज ही राजच्युत होंगे?”

भवानंद–“पलासी में अंगरेजो की फौज कितनी थी?”

महेद्र –“अंगरेज और बंगाली बराबर है?”

भवानंद –“न कैसे बराबर होंगे? शरीर मे अधिक बल होने से क्या गोला ज्यादा तेज चलता है?”

महेद्र–“तब अंगरेजो और मुसलमानो मे इतना अंतर क्यो है?”

भवानंद –“मान लो एक अंगरेज प्राण जाने पर भी भागता नहीं, लेकिन एक मुसलमान पसीना होते ही भागता है, शरबत की खोज करता है। इसके बाद मान लो, अंगरेज जो करना चाहते है, करके छोड़ते है, उनमें लगन होती है, लेकिन मुसलमान आरामतलब होते है, रुपयो के लिए प्राण देते है- उस पर तनखाह भी तो नहीं पाते। सबसे अंतिम बात यह है कि अंगरेज साहसी होते है। एक गोला एक ही जगह जाकर गिरेगा, दस जगह नहीं, अतः एक गोले को देखकर दस आदमियो के भागने की क्या जरूरत है? एक गोले के छूटते ही मुसलमान फौज-की-फौज भागती है। लेकिन सैकड़ो गोले देखकर भी एक अंगरेज तो नहीं भागता।.....”

महेद्र–“तुम लोग मे ये सब गुण है” भवानंद –“नहीं, लेकिन गुण पेड़ो मे फलते तो नहीं, अभ्यास से ही आते है”

महेद्र –“तुम लोग क्या अभ्यास करते हो? ?”

भवानंद –“देखते नहीं हो, हम लोग सन्यासी है ! हमारा सन्यास इसी अभ्यास के लिए है। कार्योंद्वार होने पर, अभ्यास पूरा होने पर, हम लोग फिर गृहस्थ हो जाएंगे। हम लोगो के भी स्त्री-कन्या सब है।”

महेद्र –“तुम लोग उन सबको त्यागकर माया-मोह से परे हो सके हो?”

भवानंद –“संतान झूठ नहीं बोला करते- तुम्हारे सामने मे मिथ्या बड़ाई करना नहीं चाहता- माया से परे कौन हो सकता है? जो कहे कि हमने माया काट दी है, शायद उसे माया-ममता कभी रही ही नहीं, या वह मिथ्यावादी है। हम माया से परे नहीं हुए है, लेकिन हम लोग अपने इस व्रत की रक्षा करते है। तुम संतान बनोगे?”

महेद्र –“बिना अपनी स्त्री-कन्या का पता पाए और मिले, मैं कुछ नहीं कर सकता।”

भवानंद –“चलो, तुम अपनी स्त्री-कन्या को देखोगे? चलो!”

दोनों शांत राह चुपचाप तय करने लगे। भवानंद ने फिर वंदेमातरम् गाना शुरू किया। महेद्र का गला भी सुरीला था, संगीत मे कुछ अभ्यास और रुचि भी थी, अतः वे भी साथ ही गाने लगे। उन्होंने देखा कि यह अपूर्व देशगीत गाते-गाते आंखो मे जल आने लगता है। तब महेद्र ने कहा –“यदि स्त्री-कन्या का त्याग न करना पड़े तो इस व्रत मे मुझे भी दीक्षित कर लो!”

भवानंद –“यह व्रत जो लेता है, उसे स्त्री-कन्या का त्याग करना ही पड़ता है। तुम यदि यह व्रत लेना चाहोगे, तो स्त्री-कन्या से मुलाकात करने न पाओगे! उनकी रक्षा के लिए उपयुक्त प्रबंध कर दिया जाएगा,

लेकिन व्रत की सफलता तक उनका मुखदर्शन नहीं मिलेगा।”

महेद्र-“तब मैं यह व्रत ग्रहण न करूंगा।”

सबेरा हो गया है। वह जनहीन कानन अब तक अंधकारमय और शब्दहीन था। अब आलोकमय प्रातः काल में आनंदमय कानन के ‘आनंद-मठ’ सत्यानंद स्वामी मृगचर्म पर बैठे हुए संध्या कर रहे हैं। पास में भी जीवानंद बैठे हैं। ऐसे ही समय महेद्र को साथ में लिए हुए स्वामी भवानंद वहां उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी चुपचाप संध्या में तल्लीन रहे, किसी को कुछ बोलने का साहस न हुआ। इसके बाद संध्या समाप्त हो जाने पर भवानंद और जीवानंद दोनों ने उठकर उनके चरणों में प्रणाम किया, पदधूलि ग्रहण करने के बाद दोनों बैठ गए। सत्यानंद इसी समय भवानंद को इशारे से बाहर बुला ले गए। हम नहीं जानते कि उन लोगों में क्या बातें हुईं। कुछ देर बाद उन दोनों के मंदिर में लौट आने पर मंद-मंद मुसकाते हुए ब्रह्मचारी ने महेद्र से कहा-
“बेटा! मैं तुम्हारे दुःख से बहुत दुःखी हूँ। केवल उन्हीं दीनबंधु प्रभु की ही कृपा से कल रात तुम्हारी स्त्री और कन्या को किसी तरह बचा सका।” यह उन्हीं ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रक्षा का सारा वृत्तांत सुना दिया। इसके बाद उन्होंने कहा-“चलो वे लोग जहां हैं वही तुम्हें ले चले!”

यह कहकर ब्रह्मचारी आगे-आगे और महेद्र पीछे देवालय के अंदर घुसे। प्रवेश कर महेद्र ने देखा- बड़ा ही लंबा चौड़ा और ऊंचा कमरा है। इस अरुणोदय काल में जबकि बाहर का जंगल सूर्य के प्रकाश में हीरों के समान चमक रहा है, उस समय भी इस कमरे में प्रायः अंधकार है। घर के अंदर क्या है- पहले तो महेद्र यह देख न सके, किंतु कुछ देर बाद देखते-देखते उन्हें दिखाई दिया कि एक विराट चतुर्भुज मूर्ति है, शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, कौस्तुभमणि हृदय पर धारण किए, सामने घूमता सुदर्शनचक्र लिए स्थापित है। मधुकैटभ जैसी दो विशाल छिन्नमस्तक मूर्तियां खून से लथपथ सी चित्रित सामने पड़ी हैं। बाएं लक्ष्मी आलुलायित-कुंतला शतदल-मालामण्डिता, भयत्रस्त की तरह खड़ी है। दाहिने सरस्वती पुस्तक, वीणा और मूर्तिमयी राग-रागिनी आदि से घिरी हुई स्तवन कर रही है। विष्णु की गोद में एक मोहिनी मूर्ति-लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक सुंदरी, उनसे भी अधिक ऐश्वर्यमयी- अंकित है। गंधर्व, किन्नर, यक्ष, राक्षसगण उनकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारी ने अतीव गंभीर, अतीव मधुर स्वर में महेद्र से पूछा-“सब कुछ देख रहे हो?”

महेद्र ने उत्तर दिया-“देख रहा हूँ”

ब्रह्मचारी-“विष्णु की गोद में कौन है, देखते हो?”

महेद्र-“देखा, कौन है वह?”

ब्रह्मचारी -“मां!”

महेद्र -“यह मां कौन है?”

ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया -“हम जिनकी संतान है।”

महेद्र -“कौन है वह?”

ब्रह्मचारी -“समय पर पहचान जाओगे। बोलो, वंदे मातरम्! अब चलो, आगे चलो!”

ब्रह्मचारी अब महेद्र को एक दूसरे कमरे में ले गए। वहां जाकर महेद्र ने देखा- एक अद्भुत शोभा-संपन्न, सर्वाभरणभूषित जगद्धात्री की मूर्ति विराजमान है। महेद्र ने पूछा-“यह कौन है?”

ब्रह्मचारी-“मां, जो वहां थी।”

महेद्र-“यह कौन है?”

ब्रह्मचारी -“इन्होंने यह हाथी, सिंह आदि वन्य पशुओं को पैरो से रौंदकर उनके आवास-स्थान पर अपना

पद्यासन स्थापित किया। ये सर्वालंकार-परिभूषिता हास्यमयी सुंदरी है- यही बालसूर्य के स्वर्णिम आलोक आदि ऐश्वर्यों की अधिष्ठात्री है- इन्हे प्रणाम करो !”

महेद्र ने भक्तिभाव से जगद्धात्री-रूपिणी मातृभूमि-भारतमाता को प्रणाम किया। तब ब्रह्मचारी ने उन्हे एक अंधेरी सुरंग दिखाकर कहा-“इस राह से आओ !” ब्रह्मचारी स्वयं आगे-आगे चले। महेद्र भयभीत चित्त से पीछे-पीछे चल रहे थे। भूगर्भ की अंधेरी कोठरी में न जाने कहां से हलका उजाला आ रहा था। उस क्षीण आलोक में उन्हे एक काली मूर्ति दिखाई दी।

ब्रह्मचारी ने कहा-“देखो अब मां का कैसा स्वरूप है !”

महेद्र ने कहा-“काली?”

ब्रह्मचारी-“हां मां काली- अंधकार से घिरी हुई कालिमामयी समय हरनेवाली है इसीलिए नग्न है। आज देश चारो तरफ श्मशान हो रहा है, इसलिए मां कंकालमालिनी है- अपने ‘शिव’ को अपने ही पैरो तले रौंद रही है। हाय मा ! ब्रह्मचारी की आंखे से आंसू की धारा-बहने लगी।”

ब्रह्मचारी -“हमलोग संतान है। अपनी मां के हाथो में अभी केवल अस्त्र रख दिए हैं। बोलो- वन्देमातरम् !”

‘वन्देमातरम्- कहकर महेद्र ने मां काली को प्रणाम किया।’

अब ब्रह्मचारी ने कहा-“इस राह से आओ !” यह कहकर वे दूसरी सुरंग में चले। सहसा उन लोगो के सामने प्रातः सूर्य की किरणे चमक उठी, चारो तरफ मधुर से पक्षी कूज उठे। सामने देखा, एक संगमरमर से निर्मित विशाल मंदिर के बीच सुवर्ण-निर्मित दशभुज-प्रतिमा नव-अरुण की किरणा से ज्योतिर्मयी होकर हंस रही हैं। ब्रह्मचारी ने प्रणाम कर कहा-“ये हैं मां, जो भविष्यत में उनका रूप होगा। इनके दशभुज दशो दिशाओ में प्रसारित हैं, उनमें नाना आयुधरूप में नाना शक्तियां शोभित हैं। पैरो के नीचे शत्रु दबे हुए हैं, पैरो के निकट वीर-केशरी भी शत्रु-निपीड़न से मग्न हैं।” दिक्भुजा-“कहते-कहते सत्यानंद गद्गद् हो रोने लगे- “दिक्भुजा- नानाप्रहरणधारिणी, शत्रुविमर्दिनी, वीरेन्द्रपृष्ठविहारिणी, दाहिने लक्ष्मी भाग्यरूपिणी, बाएं वाणी विद्याविज्ञानदायिनी- साथ में शक्ति के आधार कार्तिकेय, कार्यसिद्धिरूपी गणेश- आओ, हम दोनो मां को प्रणाम करे !” इस पर दोनो ही हाथ जोड़कर माता का रूप निहारते हुए प्रार्थना करने लगे-

“सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।

शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोस्तुते ॥”

दोनो के भक्ति-भाव से प्रणाम कर चुकने के बाद, भरे हुए गले से महेद्र ने पूछा-“ मा की ऐसी मूर्ति कब देखने को मिलेगी?”

ब्रह्मचारी ने कहा -“जिस दिन मां की सारी सन्ताने एक साथ मां को बुलाएंगी, उसी दिन मां प्रसन्न होगी।”

एकाएक महेद्र ने पूछा -“मेरी स्त्री-कन्या कहां है?”

ब्रह्मचारी-“चलो, देखोगे? चलो !”

महेद्र -“उन लोगो से भी एक बार मैं मिलूंगा, इसके बाद उन्हे बिदा कर दूंगा।”

ब्रह्मचारी-“क्यो बिदा करोगे?”

महेद्र -“मैं भी यह महामंत्र ग्रहण करूंगा !”

ब्रह्मचारी -“उन्हे कहां बिदा करोगे?”

महेद्र ने विचारकर कहा-“मेरे धर पर कोई नहीं है, मेरा दूसरा कोई स्थान भी नहीं है। इस महामारी के समय

और कहां स्थान मिलेगा।”

ब्रह्मचारी-“जिस राह से यहां आये हो, उसी राह से मंदिर से बाहर जाओ! मंदिर के दरवाजे पर तुम्हें स्त्री-कन्या दिखाई देगी। कल्याणी अभी तक निराहार है। जहां वे दोनों बैठी हैं वही भोजन की सामग्री पाओगे। उसे भोजन कराके तुम्हारी जो इच्छा हो करना। अब हम लोगो में से किसी से कुछ देर मुलाकात न होगी। यदि तुम्हारा मन इधर होगा तो समय पर मैं तुमसे मिलूंगा।”

इसके बाद ही किसी तरह से एकाएक ब्रह्मचारी अंतर्हित हो गए। महेद्र ने पूर्व-परिचित राह से लौटकर देखा- नाट्य मंदिर में कल्याणी कन्या को लिए हुए बैठी है।

इधर सत्यानंद एक दूसरी सुरंग में जाकर एक अकेली भूगर्भस्थित कोठरी में उतर पड़े। वहां जीवानन्द और भुवानन्द बैठे हुए रुपये गिन-गिनकर रख रहे थे। उस कमरे में ढेरों सोना, चांदी, तांबा, हीरे, मोती, मूंगे रखे हुए थे। गत रात खजाने की लूट का माल ये लोग गिन-गिनकर रख रहे थे।

सत्यानंद ने कमरे में प्रवेश कर कहा-“जीवानंद! महेद्र हमारे साथ आया। उसके आने से संतानो का विशेष कल्याण होगा। कारण आने से उसके पूर्वजो का संचित धन मां की सेवा में अर्पित होगा। लेकिन जब तक वह तन-मन-वचन से मातृभक्त न हो, तब तक उसे ग्रहण न करना। तुम लोगो के हाथ का काम समाप्त होने पर तुम लोग भिन्न-भिन्न समय में उसका अनुसरण करना, उचित समय पर उसे श्रीविष्णुमंडप में उपस्थित करना, और समय हो या कुसमय हो, उन लोगो की रक्षा अवश्य करना। कारण, जैसे दुष्टो का दमन और दलन संतानो का धर्म है, वैसे ही शिष्टो की रक्षा करना भी संतानो का धर्म है।”

अनेक दुःखों के बाद महेद्र और कल्याणी में मुलाकात हुई। कल्याणी रोकर पछाड़ खा गिरी। महेद्र और भी रोए। रोने-गाने के बाद आंखों के पोछने की धूम मच गई। जितने बार आंखें पोंछी जाती थी, उतनीही बार आंसू आ जाते थे। आंसू बंद करने के लिए कल्याणी ने भोजन की बात उठाई। ब्रह्मचारीजी के अनुचर जो खाना रख गए थे, कल्याणी ने उसे खाने के लिए महेद्र से कहा। दुर्भिक्ष के दिनों में इधर अन्न भोजन की कोई संभावना नहीं थी, फिर भी आसपास जो कुछ है, संतानो के लिए वह सुलभ है। वह जंगल साधारण मनुष्यो के लिए अगम्य है जहां जिस वृक्ष में जो फल होते हैं, उन्हें भूखे लोग तोड़कर खाते हैं, किंतु इस अगम्य वन के वृक्षो का फल कोई नहीं पाता इसलिए ब्रह्मचारी के अनुचर ढेरों फल और दूध लाकर रख जाने में समर्थ हुए। संन्यासीजी की सम्पत्ति में अनेक गौएं भी हैं। कल्याणी के अनुरोध पर महेद्र ने पहले कुछ भोजन किया, इसके बाद बचा हुआ भोजन अकेले में बैठकर कल्याणी ने खाया। उन लोगो ने थोड़ा दूध कन्या को पिलाया, बाकी बचा हुआ रख लिया- फिर पिलाने की आशा ही तो माता-पिता का संतान के प्रति धर्म है। इसके बाद थकावट और भोजन के कारण दोनों ने निद्राभिभूत होकर आराम किया।

नींद से उठने के बाद दोनों विचार करने लगे-“अब कहां चलना चाहिए?” कल्याणी ने कहा-“घर पर विपद की संभावना समझकर हमने गृहत्याग किया था, लेकिन अब देखती हूं कि घर से भी अधिक कष्ट बाहर है। न हो तो चलो, घर ही लौट चले!” महेद्र की भी यही इच्छा थी। महेद्र की इच्छा है कि कल्याणी को घर पर बैठाकर, कोई एक विश्वासी अभिभावक नियुक्त कर, इस परमरमणीय, अपार्थिव पवित्र मातृसेवा-व्रत को ग्रहण करेगे। अतः इस बात पर वे सहज ही सहमत हो गए। अब दोनों ही प्राणियो ने थकावट दूर होने पर कन्या को गोद में लेकर फिर पदचिन्ह की तरफ यात्रा की।

किंतु पदचिन्ह जाने के लिए किस राह से जाना होगा- उस दुर्भेद्य वन में वे कुछ भी समझ न सके। उन्होने समझा था कि जंगल पार होते ही हमें राह मिल जाएगी और पदचिन्ह पहुंच सकेगे। लेकिन वहां तो बन का ही थाह नहीं लगता है। बहुत देर तक वे लोग वन के अंदर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे और बार-बार घूम-फिरकर

वे लोग मठ में ही पहुंच जाते थे। उन्हें जंगल से पार होनेवाली राह मिलती ही नहीं थी। यह देखते हुए सामने एक वैष्णव वेशधारी खड़े हंस रहे थे। यह देखकर महेद्र ने रुष्ट होकर उनसे कहा—“गोस्वामी! खड़े-खड़े हंसते क्यों हो?”

गोस्वामी बोले—“तुमलोग इस वन में आए कैसे?”

महेद्र बोले—“जैसे भी हो आ ही गए हैं!”

गोस्वामी—“प्रवेश कर सके तो बाहर क्यों नहीं निकल पाते हो?” यह करकर वैष्णव फिर हंसने लगे।

महेद्र ने वैसे ही रुष्ट स्वर में कहा—“हंसते तो हो, लेकिन क्या तुम इसके बाहर निकल सकते हो?”

वैष्णव ने कहा—“मेरे साथ आओ, मैं राह बता देता हूँ। अवश्य ही तुम लोग ब्रह्मचारीजी के संग आए होगे, अन्यथा न तो कोई यहां आ सकता है, न निकल ही सकता है। अपरिचितों के लिए यह भूल-भुलैया है।”

यह सुनकर महेद्र ने कहा—“आप भी सन्तान है?”

वैष्णव ने कहा—“हां, मैं भी सन्तान हूँ। मेरे साथ आओ। तुम्हें राह दिखाने के लिए ही मैं यहां खड़ा हूँ।”

महेद्र ने पूछा—“आपका नाम क्या है?”

वैष्णव ने उत्तर दिया—“मेरा नाम धीरानंद स्वामी है।”

यह कहकर धीरानंद आगे-आगे चले और कल्याणी के साथ महेद्र पीछे-पीछे। धीरानंद ने एक बड़ी सी दुर्गम राह से उन्हें जंगल के बाहर कर दिया और आगे की राह बता दी। इसके बाद वे फिर जंगल में पलटकर गायब हो गए।

आनंद-वन से बाहर निकल आने पर कुछ दूर तक राह चलने में तो जंगल उनके एक बाजू रहा। जंगल की बगल से ही शायद वह राह गई है। एक जगह जंगल में से ही एक छोटी नदी कलकल कर बहती है। जल बहुत ही साफ है, लेकिन देखने पर जंगल की छाया से जल भी काला दिखाई देता है। नदी के दोनों बाजू सघन बड़े-बड़े वृक्ष मनोरम छाया किए हुए हैं, विभिन्न पक्षी उन पेड़ों पर बैठे कलरव कर रहे हैं। उनका कलरव-कूजन, नदी की कलकल-ध्वनि से मिलकर अपूर्व श्रुतिमधुर जान पड़ता है। वैसे ही वृक्ष के रंग से नदी-जल का रंग भी वैसे ही झलक रहा है। कल्याणी का मन भी शायद उस रंग में मिल गया। कल्याणी नदी तट के एक वृक्ष से लगकर बैठ गई। उन्होंने अपने पति को भी बैठने को कहा। कल्याणी अपने पति के हाथों को अपने हाथों में लिए बैठी रही। फिर बोली—“तुम्हें आज बहुत उदास देखती हूँ। विपद जो आयी थी, उससे तो उद्धार मिल गया है, अब इतना दुःख क्यों?”

महेद्र ने एक ठंढी सांस लेकर कहा—“मैं अब अपने आपे में नहीं हूँ। मैं क्या करूँ- कुछ समझ में नहीं आता।”

कल्याणी—“क्यों?”

महेद्र—“तुम्हारे खो जाने पर मेरा क्या हाल हुआ, सुनो!”

यह कहकर महेद्र ने अपनी सारी कहानी सविस्तार वर्णन कर दी।

कल्याणी ने कहा—“मुझे भी बड़ी विपदों का सामना करना पड़ा, बहुत तकलीफ उठाई। तुम उन्हें सुनकर क्या करोगे! इतने दुःखों पर भी मुझे कैसे नींद आई थी, कह नहीं सकती- कल आखिर रात भी मैं सोई थी। नींद में मैंने स्वप्न देखा। देखा- नहीं कह सकती, किस पुण्यबल से मैं एक अपूर्व स्थान में पहुंच गई हूँ। वहां मिट्टी नहीं है, केवल प्रकाश- अति शीतल- बादल हट जाने पर जैसा प्रकाश रहता है, वैसे ही प्रकाश! वहां मनुष्य नहीं थे, केवल प्रकाशमय मूर्तियां थी, वहां शब्द नहीं होता था, केवल दूर अपूर्व संगीत जैसी ध्वनि सुनाई पड़ती थी। सदाबहार मल्लिका-मालती-गंधराज की अपूर्व सुगंध फैली थी। वहां सबसे ऊंचे दर्शनीय

स्थान पर कोई बैठा था, मानो आग में तपा हुआ नील-कमल धधकता हुआ बैठा हो। उसके माथे पर सूर्य के प्रकाश जैसा मुकुट था; उसके चार हाथ थे। उसके दोनो बाजू कौन था, मैं पहचान न सकी, लेकिन कोई स्त्री-मूर्ति थी। लेकिन उनमें इतनी ज्योति, इतना रूप, इतना सौंरभ था कि मैं उधर देखते ही विह्वल हो गई- उधर ताक न सकी, देख न सकी कि वे कौन हैं? उन्ही चतुर्भुज के सामने एक स्त्री और खड़ी थी- वह भी ज्योतिर्मयी थी, लेकिन चारों तरफ मेघ जैसा छाया था, आभा पूरी तरह दिखाई नहीं देती थी। अस्पष्ट रूप में जान पड़ता था कि वह नारीमूर्ति अति दुर्बल, मर्मपीड़ित, अनन्य-सुंदरी, लेकिन रो रही है। वहां के मंद-सुगंध पवन ने मानो मुझे घुमाते-फिरते वहां चतुर्भुज मूर्ति के सामने ला खड़ा किया। उस मेधमंडिता दुर्बल स्त्री ने मुझे देखकर कहा- यही है, इसी के कारण महेद्र मेरी गोद में आता नहीं है।'

इसके बाद ही एक अपूर्व वंशी जैसी मधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। वह शब्द उन चतुर्भुज का था, उन्होंने मुझे कहा-“तुम अपने पति को छोड़कर मेरे पास चली आओ! यह तुम लोगो की मां है महेद्र इसकी सेवा करेगा। तुम यदि पति के पास रहोगी तो वह इनकी सेवा न कर सकेगा। तुम चली जाओ।” मैंने रोकर कहा-“पति को छोड़कर मैं कैसे चली आऊं?” इसके बाद ही फिर उसी अपूर्व स्वर में उन्होंने कहा-“मैं ही स्वामी, मैं ही पुत्र, मैं ही माता, मैं ही पिता और मैं ही कन्या हूं, मेरे पास आओ!” “मैंने क्या उत्तर दिया, मुझे याद नहीं, लेकिन इसके बाद ही नींद खुल गई।” यह कहकर कल्याणी चुप हो रही।

महेद्र विस्मित, स्तम्भित होकर चुप हो रहे। ऊपर पेड़ पर कोई पक्षी बोल उठा, पपीहा अपनी बोली से आकाश गुंजाने लगा, कोकिल सप्त-स्वरो में गाने लगी, भृंगराज की झनकार से जंगल गूंज उठा। पैरो के नीचे तरिणी मृदु कल्लोल कर रही थी। बहुतेरे वन्य पुष्पो के सौंरभ से मन हरा हो रहा था। कहीं-कहीं नदी-जल को सूर्य-रश्मि चमका रही थी। कहीं ताड़ के पत्ते हवा के झोके से मरमरा रहे थे। दूर नीली पर्वत-श्रेणी दिखाई पड़ रही थी। दोनो ही जन मुग्ध-नीरव हो यह सब देखते रहे। बहुत देर बाद कल्याणी ने फिर पूछा-“क्या सोच रहे हो?”

महेद्र-“यही सोचता हूं कि क्या करना चाहिए? यह स्वप्न केवल विभीषिका मात्र है, अपने ही हृदय में पैदा होकर अपने ही में लीन हो जाता है। चलो, घर चले!”

कल्याणी-“जहां ईश्वर तुम्हें जाने को कहते हैं, तुम वही जाओ!”

यह कहकर कल्याणी ने कन्या अपने पति की गोद में दे दी। महेद्र ने उसे अपने गोद में लेकर पूछा-“और तुम.....तुम कहां जाओगी?”

कल्याणी अपने दोनो हाथों से दोनो आंखों को ढंके हुए, साथ ही मस्तक पकड़े हुए बोली-“मुझे भी भगवान ने जहां जाने को कहा है वही जाऊंगी।”

महेद्र चौंक उठे। बोले-“वहां कहां? कैसे जाओगी?”

कल्याणी ने अपने पास की वही जहर की डिबिया दिखाई।

महेद्र ने डरते हुए भौंचक्क होकर कहा-“यह क्या? जहर खाओगी?”

कल्याणी-“मन में तो सोचा था, खाऊंगी, लेकिन.....”

कल्याणी चुप होकर विचार में पड़ गई, महेद्र उसका मुंह तकते रहे- प्रति निमेष वर्ष-सा प्रतीत होने लगा। उन्होंने देखा कि कल्याणी ने बात पूरी न कही, अतः बोले-“लेकिन के बाद आगे क्या कह रही थी?”

कल्याणी-“मन में था कि खाऊंगी, लेकिन तुम्हें छोड़कर, सुकुमारी कन्या को छोड़कर बैकुंठ जाने की भी मेरी इच्छा नहीं होती। मैं न मरूंगी!”

यह कहकर कल्याणी ने विष की डिबिया जमीन पर रख दी। इसके बाद दोनो ही पी-पुरुष भूत-भविष्य की

अनेक बाते करने लगे। बातें करते हुए दोनो ही अन्यमनस्क हो उठे। इसी समय खेलते-खेलते सुकुमारी कन्या ने विष की डिबिया उठा ली। उसे किसी ने न देखा।

सुकुमारी ने मन में सोचा कि बढ़िया खेलने की चीज है। उसने इस डिबिया को एक बार बाएं हाथ में लेकर दाहिने हाथ से खींचा। इसके बाद दाहिने हाथ से पकड़कर बाएं हाथ से खींचा। इसके बाद दोनो हाथों से उसे खींचना शुरू किया। फल यह हुआ कि डिबिया खुल गई, उसमें से जहर की टिकिया बाहर गिर पड़ी।

बाप के कपड़े के ऊपर वह टिकिया गिरी- सुकुमारी ने उसे देखा, मन में सोचा, कि यह एक दूसरी खेलने की चीज है डिबिया के दोनो ढक्कन उसने छोड़ दिए और उस टिकिया को उठा लिया।

डिबिया को सुकुमारी ने मुंह में क्यों नहीं डाला, नहीं कहा जा सकता। लेकिन टिकिया में उसने जरा भी विलम्ब न किया? “प्रसिमात्रेण भोक्तव्यं” -- सुकुमारी ने उस जहर की टिकिया को मुंह में डाल लिया।

“क्या खाया? अरे क्या खाया? गजब हो गया!”.....

झद्दयह कहती हुई कल्याणी ने कन्या के मुंह में उंगली डाल दी। उसी समय दोनो ने देखा कि विष की डिबिया खाली पड़ी हुई है। सुकुमारी ने सोचा कि यह भी खेल की चीज है, अतः उसने उसे दांतों से दबा लिया और माता का मुंह देखकर मुस्कराने लगी। लेकिन जान पड़ता है, इसी समय जहर का कड़वा स्वाद उसे मालूम पड़ा और उसने मुंह बिगाड़कर खोल दिया- वह टिकिया दांतों में चिपकी हुई थी। माता ने तुरंत निकाल कर उसे जमीन पर फेंक दिया। लड़की रोने लगी।

टिकिया उसी तरह पड़ी रही। कल्याणी तुरंत नदी-तट पर जाकर अपना आंचल भिगो लाई और लड़की के मुंह में जल देकर उसने धुलवा दिया। बड़ी ही कातर वाणी से कल्याणी ने महेद्र से पूछा-“क्या कुछ पेट में गया होगा?”

बुरी बात ही मां-बाप के मुंह से पहले निकलती है- जहां अधिक प्रेम होता है, वहां भय भी बहुत अधिक होता है। महेद्र ने यह कभी देखा न था कि टिकिया पहले कितनी बड़ी थी। अब उन्होंने टिकिया अपने हाथ में उठाकर मजे में उसे देखकर कहा-“मालूम तो होता है कि कुछ खा गई है।”

कल्याणी को कुछ ऐसा ही विश्वास हुआ। टिकिया हाथ में लेकर बहुत देर तक वह भी उसकी जांच करती रही। इधर कन्या ने दो-एक घूंट रस जो चूस लिया था, उससे उसकी दशा बिगड़ने लगी- वह छटपटाने लगी, रोने लगी, अंत में कुछ बेहोश सी हो पड़ी। तब कल्याणी ने पति से कहा-“अब क्या देखते हो? जिस राह पर भगवान ने बुलाया है, उसी राह पर सुकुमारी चली, मुझे भी वही राह लेनी पड़ेगी।”

यह कहकर कल्याणी ने उस टिकिया को उठाकर मुंह में डाल लिया और एक क्षण में निगल गई।

महेद्र रोने लगे-“क्या किया, कल्याणी! अरे तुमने यह क्या किया है?”.....

कल्याणी ने कोई उत्तर न देकर पति के पैरों की धूलि माथे लगाई, फिर बोली-“प्रभु! बात बढ़ाने से बात बढ़ेगी.....मैं चली।”

“कल्याणी! यह क्या किया?” - कहकर महेद्र चिल्लाकर रोने लगे।

बड़े ही धीमे स्वर में कल्याणी बोली-“मैंने अच्छा ही किया है, इस नाचीज औरत के पीछे तुम अपनी मातृभूमि की सेवा से वंचित रहते। देखो मैं देववाक्य का उल्लंघन कर रही थी, इसलिए मेरी कन्या गई। थोड़ी और अवहेलना करने से तुम पर विपत्ति आती।”

महेद्र ने रोते हुए कहा-“अरे, तुम्हें कहीं बैठाकर मैं चला जाता, कल्याणी!- कार्य सिद्ध हो जाने पर फिर हम लोग मिलकर सुखी होते। कल्याणी! मेरी सर्वस्व! तुमने यह क्या!! जिस भुजा के बल पर मैं तलवार पकड़ता, हाय! तुमने वही भुजा काट दी। तुम्हें खोकर मैं क्या रह पाऊंगा।”.....

कल्याणी-“कहां मुझे ले जाते?— कहां स्थान है? मां-बाप, सगे-संबंधी सब इस दुर्दिन में चले गए हैं। किसके घर में जगह है, कहां जाने का विचार है? कहां ले जाओगे? मैं कालग्रह हूँ— मैंने मरकर अच्छा ही किया है! मुझे आशीर्वाद दो, मैं उस आलोकमय लोक में जाकर तुम्हारी प्रतीक्षा में रहूँ और फिर तुम्हें पाऊँ।”

यह कहकर कल्याणी ने फिर स्वामी का पदरेणु ग्रहण किया। महेन्द्र कोई उत्तर न देकर रोते ही रहे। कल्याणी फिर अति मृदु, अति मधुर, अतीव स्नेहमय कंठ से बोली-“देखो, देवताओं की इच्छा, किसकी मजाल है कि उसका उल्लंघन कर सके! मुझे जाने की आज्ञा उन्होंने दी है, तो क्या मैं किसी तरह भी रुक सकती हूँ? मैं स्वयं न मरती तो कोई मार डालता! मैंने आत्महत्या कर अच्छा ही किया है। तुमने देशोद्धार का जो व्रत लिया है, उसे तन-मन-धन से पूरा करो— इसी में तुम्हें पुण्य होगा— इसी पुण्य से मुझे भी स्वर्गलाभ होगा। हम दोनों ही साथ-साथ अक्षय स्वर्गमुख का उपभोग करेंगे।”

इधर बालिका एक बार दूध की उल्टी कर सम्भलने लगी। उसके पेट में जिस परिमाण में विष गया था, वह घातक नहीं था। लेकिन महेन्द्र का ध्यान उस समय उधर न था। उन्होंने कन्या को कल्याणी की गोद में दे दोनो का प्रगाढ़ अलिंगन कर फूट-फूटकर रोना शुरू किया। उसी समय वन में से मधुर किंतु मेघ-गंभीर शब्द सुनाई पड़ने लगा—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!

गोपाल गोविंद मुकुंद शौरै!”

उस समय कल्याणी पर विष का प्रभाव हो रहा था, चेतना कुछ लुप्त हो चली थी। उन्होंने अवचेतन मन से सुरा, मानो वैकुण्ठ से यह अपूर्व ध्वनि उभरकर गूँज रही है—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!

गोपाल गोविंद मुकुंद शौरै!”

तब कल्याणी ने अप्सरानिन्दित कंठ से बड़े ही मोहक स्वर में गाया—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

वह महेन्द्र से बोली— “कहो हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

वन में गूँजने वाले मधुर स्वर और कल्याणी के मधुर स्वर पर विमुग्ध होकर कातर हृदय से एक मात्र ईश्वर को ही सहाय समझाकर महेन्द्र ने भी पुकारा—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

तब मानो चारों तरफ से ध्वनि होने लगी—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

और मानो वृक्ष के पत्तों से भी आवाज निकलने लगी—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

नदी के कलकल ध्वनि में भी वही शब्द हुआ—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

अब महेन्द्र अपना शोक संताप भूल गए, उन्मत्त होकर वे कल्याणी के साथ एक स्वर से गाने लगे—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

जंगल में से भी उसके स्वर से मिली हुई वाणी निकली—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

कल्याणी का कंठ क्रमशः क्षीण होने लगा, फिर भी वह पुकार रही थी—

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

इसके बाद ही उसका कंठ क्रमशः निस्तब्ध होने लगा, कल्याणी के मुंह से अब शब्द नहीं निकलता- आंखें ढंक गईं, अंग शीतल हो गए। महेद्र समझ गए कि कल्याणी ने “हरे मुरारे” कहते हुए बैकुंठ प्रयाण किया। इसके बाद ही पागलों की तरह उच्च स्वर से वन को कम्पित करते हुए पशु-पक्षियों को चौंकाते हुए महेंद्र पुकारने लगे-

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

इसी समय किसी ने आकर उनका अलिंगन किया और उसी स्वर में वह भी कहने लगा-

“हरे मुरारे मधुकैटभारे !”

तब उस अनंत ईश्वर की महिमा से, उस अनंत वन में अनंत पथगामी शरीर के सामने दोनो जन अनंत नाम-स्मरण करने लगे। पशु-पक्षी नीरव थे, पृथ्वी अपूर्व शोभामयी थी- इस परम पावन गीत के उपयुक्त मंदिर था वह। सत्यानंद महेद्र को बांहों में संभाल कर बैठ गए।

इधर राजधानी की शाही राहों पर बड़ी हलचल उपस्थित हो गई। शोर मचने लगा कि नवाब के यहां से जो खजाना कलकत्ते आ रहा था, संन्यासियों ने मानकर सब छीन लिया। राजाज्ञा से सिपाही और बल्लमटेर संन्यासियों को पकड़ने के लिए छूटे। उस समय दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रदेश में वास्तविक संन्यासी रह ही न गए थे। कारण, वे लोग भिक्षाजीवी ठहरे, जनता स्वयं खाने को नहीं पाती तो उन्हें वह कैसे दे सकती है? अतएव जो असली संन्यासी भिक्षुक थे, वे लोग पेट की ज्वाला से व्याकुल होकर काशी-प्रयाग चले गए थे। आज ये हलचल देखकर कितनो ने ही अपना संन्यासी वेष त्याग दिया। राज्य के भूखे सैनिक, संन्यासियों को न पाकर घर-घरमें तलाशी लेकर खाने और पेट भरने लगे। केवल सत्यानन्द ने किसी तरह भी अपने गैरिक वस्त्रों का परित्याग न किया।

उसी कल्लोलवाहिनी नदी-तट पर, शाही राह के बगल में पही पेड़ के नीचे कल्याणी पड़ी हुई है। महेद्र और सत्यानंद परस्पर अलिंगनबद्ध होकर आंसू बहाते हुए भगवन्नाम-उच्चारण में लगे हुए हैं। उसी समय एक जमादार सिपाहियों का दल लिए हुए वहां पहुंच गया। संन्यासी के गले पर एक बारगी हाथ ले जाकर जमादार बोला-“यह साला संन्यासी है !”

इसी तरह एक दूसरे ने महेद्र को पकड़ा। कारण, जो संन्यासी का साथी है वह अवश्य संन्यासी होगा। तीसरा एक सैनिक घास पर पड़े हुए कल्याणी के शरीर की तरफ लपका- उसने देखा की औरत मरी हुई है, संन्यासी न होने पर भी हो सकती है। उसने उसे छोड़ दिया। बालिका को भी यही सोच कर उसने छोड़ दिया। इसके बाद उन सबने और कुछ न कहा, तुरंत बांध लिया और ले चले दोनो जन को। कल्याणी की मृत देह और कन्या बिना रक्षक के पेड़ के नीचे पड़ी रही। पहले तो शोक से अभिभूत और ईश्वर के प्रेम में उन्मत्त हुए महेद्र प्रायः विचेतन अवस्था में थे- क्या हो रहा था, क्या हुआ- इसे वह कुछ समझ न सके। बंधन में भी उन्होंने कोई आपत्ति न की। लेकिन दो-चार कदम अग्रसर होते ही वे समझ गए कि ये सब मुझे बांध लिए जा रहे हैं- कल्याणी का शरीर पड़ा हुआ है, उसका अंतिम संस्कार नहीं हुआ- कन्या भी पड़ी हुई है। इस अवस्था में उन्हें हिंस्र पशु खा जा सकते हैं। मन में यह भाव आते ही महेद्र के शरीर में बल आ गया और उन्होंने कलाइयों को मरोड़कर बंधन को तोड़ डाला। फिर पास में चलते जमादार को इस जोर की लात लगायी कि वह लुड़कता हुआ दस हाथ दूर चला गया। तब उन्होंने पास के एक सिपाही को उठाकर फेंका। लेकिन इसी समय पीछे के तीन सिपाहियों ने उन्हें पकड़कर फिर विवश कर दिया। इस पर दुःख से कातर होकर महेद्र ने संन्यासी से

कहा-“ आप जरा भी मेरी सहायता करते, तो मैं इन पांचो दुष्टो को यमद्वार भेज देता ।”

सत्यानंद ने कहा-“ मेरे इस बूढ़े शरीर मे बल ही कहां है? मैं तो जिन्हे बुला रहा हूं, उनके सिवा मेरा कोई सहारा नही है। जो होना है- वह होकर रहेगा, तुम विरोध न करो। हम इन पांचो को पराजित कर न सकेगे। देखे, ये हमें कहां ले जाते है..... भगवान् हर जगह रक्षा करेगे !”

इसके बाद इन लोगो ने मुक्ति की फिर कोई चेष्टा न की, चुपचाप सिपाहियो के पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर जाने पर सत्यानंद ने सिपाहियो से पूछा-“ बाबा! मैं तो हरिनाम कह रहा था, क्या भगवान का नाम लेने मे भी कोई बाधा है? ” जमादार समझ गया कि सत्यानंद भले आदमी है। उसने कहा-“ तुम भगवान का नाम लो, तुम्हे रोकूंगा नही। तुम वृद्ध ब्रह्मचारी हो, शायद तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हो जाएगा। मगर यह बदमाश फांसी पर चढ़ेगा !”

इसके बाद ब्रह्मचारी मृदु स्वर से गाने लगे-

“ धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने बनबारी।

मा कुरु धनुर्धर गमन विलम्बनमतिविधुरा सुकुमारी ॥.....”

इत्यादि।

नगर मे पहुंचने पर वे लोग कोतवाल के समीप उपस्थित किए गए। कोतवाल ने नवाब के पास इत्तिला भेजकर संप्रति उन्हे फाटक के पास की हवालात मे रखा। वह कारागार अति भयानक था, जो उसमे जाता था, प्रायः बाहर नही निकलता था, क्योकि कोई विचार करने वाला ही न था। वह अंग्रेजो के जेलखाना नही था और न उस समय अंग्रेजो के हाथ मे न्याय था। आज कानूनो का युग है- उस समय अनियम के दिन थे। कानून के युग से जरा तुलना तो करो!

रात हो गई। कारागार मे कैद सत्यानंद ने महेद्र से कहा-“ आज बड़े आनंद का दिन है। कारण, हम लोग कारागार मे कैद है। कहो-“ हरे मुरारे !”

महेद्र ने बड़े कातर स्वर मे कहा-“ हरे मुरारे !”

सत्यानंद-“ कातर क्यो होते हो, बेटे! तुम्हारे इस महाव्रत को ग्रहण करने पर तुम्हे स्त्री-कन्या का त्याग तो करना ही पड़ता, फिर तो कोई संबंध रह न जाता।.....”

महेद्र-“ त्याग एक बात है, यमदण्ड दूसरी बात! जिस शक्ति के सहारे मैं यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री-कन्या के साथ ही चली गई ।”

सत्यानंद-“ शक्ति आएगी- मैं शक्ति हूं! महामंत्र से दीक्षित होओ, महाव्रत ग्रहण करो ।” महेद्र ने विरक्त होकर कहा-“ मेरी स्त्री और कन्या को स्यार और कुत्ते खाते होंगे- मुझसे किसी व्रत की बात न कहिए !”

सत्यानंद-“ इस बारे मे चिंता मत करो! संतानो ने तुम्हारी स्त्री की अन्त्येष्टि क्रिया करके तुम्हारी लड़की को उपयुक्त स्थल मे रख छोड़ा है ।”

महेद्र विस्मित हुए, उन्हे इस बात पर जरा भी विश्वास न हुआ। उन्होने पूछा-“ आपने कैसे जाना? आप तो बराबर मेरे साथ है ।”

सत्यानंद-“ हम महामंत्र से दीक्षित है- देवता हमारे प्रति दया करते है। आज रात को तुम यह संवाद सुनोगे और आज ही तुम कैदखाने से छूट भी जाओगे ।”

महेद्र कुछ न बोला। सत्यानंद ने समझ लिया कि महेद्र को मेरी बातो का विश्वास नही होता। तब सत्यानंद बोले-“ तुम्हे विश्वास नही होता? परीक्षा करके देखो !” यह कहकर सत्यानंद कारागार के द्वार तक आए। क्या

किया, यह महेद्र को कुछ मालूम न हुआ, पर यह जान गए कि उन्होने किसी से बातचीत की है। उनके लौट आने पर महेद्र ने पूछा-“क्या परीक्षा करूं?”

सत्यानंद-“तुम अभी कारागार से मुक्ति-लाभ करोगे?”

उसके यह बात कहते-कहते कारागार का दरवाजा खुल गया। एक व्यक्ति ने घर के भीतर आकर कहा-“महेद्र किसका नाम है?”

महेद्र ने उत्तर दिया-“मेरा नाम है।”

आगंतुक ने कहा-“तुम्हारी रिहाई का हुक्म हुआ है, तुम जा सकते हो।”

महेद्र पहले तो आश्चर्य में आए। फिर सोचा, झूठी बात है। अतः परीक्षार्थ वे बाहर आए। किसी ने उनकी राह न रोकी। महेद्र शाही सड़क तक चले गए।

इस अवसर पर आगन्तुक ने सत्यानंद से कहा-“महाराज! आप क्यों नहीं जाते? मैं आपके लिए ही आया हूँ।”

सत्यानंद-“तुम कौन हो? गोस्वामी धीरानंद?”

धीरानंद-“जी हां!”

सत्यानंद-“प्रहरी कैसे बने?”

धीरानंद-“भवानन्द ने मुझे भेजा है। मैं नगर में आने के बाद और यह सुनकर कि आप इस कारागार में हैं, अपने साथ धतूरा मिली थोड़ी विजया ले आया था। यहां पहले पर जो खां साहब थे, वह उसके नशे में जमीन पर पड़े सो रहे हैं। यह जमा-जोड़ा, पकड़ी, भाला जो कुछ मैंने पाया है, यह सब उन्हीं का है।”

सत्यानंद-“तुम यह सब पहले हुए नगर के बार चले आओ। मैं इस तरह न आऊंगा।”

धीरानंद-“लेकिन.....ऐसा क्यों?”

सत्यानंद-“आज सन्तान की परीक्षा है।”

महेद्र वापस आ गए। सत्यानंद ने पूछा-“वापस क्यों आ गए?”

महेद्र-“आप निश्चय ही सिद्ध पुरुष हैं। लेकिन मैं आपका साथ छोड़कर न आऊंगा।”

सत्यानंद-“ठीक है! हम दोनों ही आज रात दूसरी तरह से बाहर होंगे।”

धीरानंद बाहर चले गए। सत्यानंद और महेद्र कारागार में ही रहे।

ब्रह्मचारी का गाना बहुतों ने सुना। और लोगो के साथ जीवानंद के कानो में भी वह गाना पहुंचा।

महेद्र की रक्षा में रहने का उन्हे आदेश मिला था- यह पाठको को शायद याद होगा। राह में एक स्त्री से मुलाकात हो गई। सात दिनों से उसने खाया न था, राह-किनारे पड़ी थी। उसे जीवन-दान देने में जीवानंद को एक घंटे की देर लग गई। स्त्री को बचाकर, विलम्ब होने के कारण उसे गालियां देते हुए जीवानंद आ रहे थे। देखा, प्रभु को मुसलमान पकड़े लिए जाते हैं- स्वामीजी गाना गाते हुए चले आ रहे हैं।

झ्रस्‘ धीर समीरे तटिनी तीरे बसति बने बनबारी।’

जीवानंद महाप्रभु स्वामी के सारे संकेतो को समझते थे।

नदी के किनारे कोई दूसरी स्त्री बिना खाए-पीए तो नहीं पड़ी हुई है? सोच-विचार जीवानंद नदी के किनारे चले। जीवानंद ने देखा था कि ब्रह्मचारी मुसलमानों द्वारा स्वयं गिरफ्तार होकर चले जा रहे हैं। अतः ब्रह्मचारी का उद्धार करना ही जीवानंद का पहला कर्तव्य था, लेकिन जीवानंद ने सोचा-“इस संकेत का तो अर्थ नहीं है। उनकी जीवनरक्षा से भी बढ़कर है, उनकी आज्ञा का पालन- यही उनकी पहली शिक्षा है। अतः उनकी आज्ञा ही पालन करूंगा।”

नदी के किनारे किनारे जीवननंद चले। जाते-जाते उसी पेड़ के नीचे नदी-तट पर देखा कि एक स्त्री की मृतदेह पड़ी हुई है और एक जीवित कन्या उसके पास है। पाठकों को स्मरण होगा कि महेद्र की स्त्री-कन्या को जीवननंद ने एक बार भी नहीं देखा था। उन्होंने मन में सोचा- हो सकता है, यही महेद्र की स्त्री-कन्या हो! क्योंकि प्रभु के साथ ही उन्होंने महेद्र को देखा था। जो हो, माता मृत और कन्या जीवित है। पहले इनकी रक्षा का प्रयास ही करना चाहिए- अन्यथा बाघ-भालू खा जाएंगे। भवानंद स्वामी भी कही पास ही होंगे, वह स्त्री का अंतिम संस्कार करेंगे- यह सोचकर जीवननंद कन्या को गोद में लेकर चल दिए।

लड़की को गोद में लेकर जीवननंद गोस्वामी उसी जंगल में घुसे। जंगल पार कर वे एक छोटे गांव भैरवीपुर में पहुंचे। अब लोग उसे भरुईपुर कहते हैं। भरुईपुर में थोड़े-से सामान्य लोगो की बसती है। पास में और कोई बड़ा गांव भी नहीं है। गांव पार करते ही फिर जंगल मिलता है। चारों तरफ जंगल और बीच में वह छोटा गांव है। लेकिन गांव है। बड़ा सुंदर। कोमल तृण से भरी हुई गोचर भूमि है, कोमल श्यामल पल्लवयुक्त आम, कटहल, जामुन, ताड़ आदि के बगीचे हैं। बीच में नील-स्वच्छ जल से परिपूर्ण तालाब है। जल में बक, हंस, डाहुक आदि पक्षी, तट पर पपीहा, कोयल, चक्रवाक हैं, कुछ दूर पर मोर पंख फैलाकर नाच रहे हैं। घर-घर के आंगन में गाय, बछड़े, बैल हैं। लेकिन आजकल गांव में धान नहीं है। किसी के दरवाजे पर पिंजड़े में तोता है, तो किसी के यहां मैना। भूमि लिपी-पोती स्वच्छ है। मनुष्य प्रायः सभी दुर्भिक्ष के कारण दुर्बल, कलांत और मलीन दिखाई देते हैं, फिर भी ग्रामवासियों में श्री है। जंगल में अनेक तरह के जंगली खाद्य पैदा होते हैं। अतः गांव के लोग वहां से फल-फूल लाते हैं और वही खाकर इस दुर्भिक्ष में भी अपने प्राण बचाए हुए हैं।

एक बड़े आम के बगीचे के बीच एक छोटा-सा घर है। चारों तरफ मिट्टी की चहारदीवारी है और चारों कोनों पर एक-एक कमरा है। गृहस्थ के पास गौ-बकरी है, एक मोर है, एक मैना है, एक तोता है। एक बंदर भी था, लेकिन उसे खाना न मिलने के कारण छोड़ दिया गया है। धान कूटने की एक ढेंकी है। बाहर बैल बंधे हैं, बगल में नीबू का पेड़ है। मालती जूही की लताएं हैं - अर्थात् गृहस्थ सुरुचि-सम्पन्न है। लेकिन घर में प्राणी अधिक नहीं है। जीवननंद कन्या को लिए हुए घर में चले गए।

घर में पहुंचते ही जीवननंद ने आंगन के ओसरे में रखे को उठा लिया और भनन्-भनन् उसे चलाने लगे। छोटी लड़की ने चरखे की आवाज कभी सुनी नहीं थी। विशेषतः माता के छूटने के बाद से वह रो रही थी। चरखे की आवाज सुनकर वह भयभीत हो और सप्तम स्वर में गला ऊंचा कर रोने लगी। रोने की आवाज सुनकर एक कमरे से सत्रह-अठारह वर्ष की युवती बाहर आई। युवती बाएं बाएं हाथ पर बायां गाल रखे, गर्दन झुकाए ही खड़ी होकर देखने लगी। बोली-“यह क्या दादा! चरखा क्यों कात रहे हो? यह लड़की कहां से पायी दादा? तुम्हें लड़की हुई है क्या? दूसरी शादी की है क्या?”

जीवननंद उठे और लड़की को उसकी गोद में देकर चपत मारते चले। बोले-“बंदरी कही की! मुझे रंडुआ-भंडुआ समझ लिया है क्या? घर में दुध है?”

इस पर युवती ने कहा-“भला दूध क्यों न होगा? आऊं पियोगे”

जीवननंद ने कहा-“हां पिऊंगा!”

व्यवस्त होकर युवती घर में दूध गरम करने लगी। तब तक जीवननंद बैठकर चरखा कातने लगे। लड़की ने युवती की गोद में जाकर रोना बंद कर दिया था। उसने क्या समझा, नहीं कहा जा सकता। शायद इस युवती को खिले पुष्प देखकर सोचा है, कि यही मेरी मां है। वह केवल एक बार रोई, वह भी शायद आग की आंच खाकर। लड़की का रोना सुनकर जीवननंद ने आवाज लगाई-“अरे निमी! अरी कलमुही बंदरी! तेरा दूध गरम नहीं हुआ क्या?” उसने भी कहा-“हो गया।” यह कहकर वह एक पथरी में दूध ढालकर जीवननंद के पास

लाकर रख बैठ गई। जीवानंद ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा-“मन करता है, यही गरम दूध की पथरी तेरे ऊपर उंडेल दूं। तूने क्या समझा कि मैं पियूंगा?”

निमी ने पूछा-“तब कौन पिएगा?”

जीवानंद-“यह लड़की पिएगी। देखती नहीं, अभी दूध पीनेवाली निरी बच्ची है!”

यह सुनकर निमी पलथी मारकर कन्या को गोद में लेकर चम्मच से दूध पिलाने बैठी। एकाएक उसकी आंखों से कई बूंद आंसू लुढ़क पड़े। बात यह थी कि उसे पहले एक बालक हुआ था, जो मर गया था। उसे इस तरह दूध पिलाने में अपने बच्चे की याद आ गई।

निमी ने तुरंत अपने आंसू पोछकर हंसते-हंसते जीवानंद से पूछा-“हैं दादा! बताओ, यह किसकी लड़की है?”

जीवानंद ने कहा-“अरी बंदरी! तुझे क्या पड़ी है?”

निमी ने कहा-“लड़की मुझे दोगे?”

जीवानंद-“तू लेकर क्या करेगी?”

निमी-“मैं लड़की को दूध पिलाऊंगी, गोद में लेकर खिलाऊंगी, बड़ी करूंगी।”

कहते-कहते निमी की आंखों से आंसू ढुलक पड़े। आंसू पोछकर वह फिर दांत निकालकर हंसने लगी। जीवानंद ने कहा-“तू लेकर क्या करोगी? तुझे आप ही कितने बाल-बच्चे होंगे।”

निमी-“जब होंगे तब होंगे। अभी इस लड़की को मुझे दे दो! न हो, बाद में फिर ले जाना।”

जीवानंद-“तो ले ले, लेकर मर! मैं बीच-बीच में आकर देख जाया करूंगा। यह कायस्थ की लड़की है। मैं अब चला...।”

निमी-“वाह दादा! भला खाओगे नहीं? समय हो गया, तुम्हें मेरी कसम, खाकर तब जाना।”

जीवानंद-“तेरी कसम टालकर तुझे खाऊं, या भात खाऊं!” फिर बोले-“रहने दे, तुझे न खाऊंगा, भात ही खाऊंगा, ला भात!”

निमी कन्या को गोद में लिए हुए खाना परोसने में व्यस्त हो गई। पहले उसने जगह पानी से धो-पोछ दी इसके बाद पीढ़ा-पानी रखकर एक थाली में भात, अरहर की दाल, परवल की तरकारी, रोहू मछली का रसा और दूध लाकर रख दिया। खाने के लिए बैठकर जीवानंद ने कहा-“निमाई बहन! कौन कहता है कि देश में अकाल है? तेरे गांव में शायद अकाल घुसा ही नहीं!”

निमी बोली-“भला अकाल क्यों न होगा- भयंकर अकाल है! हमलोग दो ही प्राणी तो हैं, बहुत कुछ है, दे-दिलाकर भी भगवान एक मुट्ठी चना ही देते हैं। हमलोगों के गांव में पानी बरसा था- याद नहीं है- तुम्हीं तो कह गए थे कि वन में पानी बरस रहा है, यहां भी बरसेगा! इसलिए हमारे गांव में धान हो गया। गांववाले और लोग तो शहर में चावल बेच आए, हमलोगों ने नहीं बेचा।”

जीवानंद ने पूछा-“जीजाजी कहां है?”

निमी ने गर्दन टेढ़ी कर कहा-“दो-तीन सेर चावल बांधकर क्या जाने किसको देने गए हैं। किसी ने चावल मांगा था।”

इधर जीवानंद के भाग्य में ऐसा भोजन कभी मिला न था। व्यर्थ बातचीत में समय न गंवाकर जीवानंद दनादन गपागप-सपासप आवाज करते हुए क्षण भर में सारा भोजन उदरस्थ कर गए। श्रीमती निमाई मणि ने केवल अपने और पति के लिए पकाया था, अपना हिस्सा उसने भाई को खिला दिया था, थाली सूनी देखकर

शर्म से अपने पति का हिस्सा लाकर थाली में डाल दिया। जीवानंद ने सब ख्याल छोड़कर उस स्वादिष्ट भोजन को भी उदर नामक महागर्त में भर लिया। अब निमाई ने पूछा—“दादा! और कुछ खाओगे?”

जीवानंद ने डकार लेते हुए कहा—“और क्या है?”

निमाई बोली—“एक पन्न कटहल है।” निमाई ने कटहल भी ला रखा। विशेष कोई आपत्ति न कर जीवानंद गोस्वामी ने उसे भी ध्वंसपुर भेज दिया। अब हंसकर निमाई ने पूछा—“दादा! और कुछ नहीं?”

दादा ने कहा—“अब रहने दे फिर किसी दिन आकर खाऊंगा।”

अंत में निमाई ने दादा को हाथ-मुंह धोने को पानी दिया। जल ढालते हुए निमाई ने पूछा—“दादा! मेरी एक बात रख लोगे?”

जीवानंद—“क्या?”

निमाई—“तुम्हें मेरी कसम!”

जीवानंद—“अरे बोल न कलमुंही”

निमाई—“बात रखोगे?”

जीवानंद—“अरे पहले बता भी तो सही।”

निमाई—“तुम्हें मेरी कसम, हाथ जोड़ती हूँ।”

जीवानंद—“अरे बाबा मंजूर है! बता तो सही, क्या कहती है?”

अब निमाई गर्दन टेढ़ी कर एक हाथ से दूसरे हाथ की ऊंगली तोड़ती हुई, शर्माती हुई, कभी नीचे जमीन देखती हुई बोली—“एक बार भाभी को बुला दूँ, मुलाकात कर लो।”

जीवानंद ने हाथ धुलाने वाले लोटे को निमी पर मारने के लिए उठाया, फिर बोले—“लौटा दे, मेरी लड़की! तेरा अन भी किसी दिन वापस कर जाऊंगा। तू बंदरी है, कलमुंही है। तुझे जो बात न कहनी चाहिए, वही बात मेरे सामने कहती है।”

निमी बोली—“अच्छा मैं ऐसी ही सही पर भैया! एक बार कह दो, मैं भाभी को बुला लाऊँ।”

जीवानंद—“तो लो मैं जाता हूँ।”

यह कहकर जीवानंद उठकर द्वार की तरफ बढ़े। किंतु शीघ्रता-पूर्वक निमाई ने दौड़कर किवाड़ बंद कर दिए और स्वयं किवाड़ से लगकर खड़ी हो गई। बोली—“मुझे मारकर ही बाहर जा सकते हो, भैया! आज भाभी से बिना मुलाकात किए जाने न पाओगे।”

जीवानंद बोले—“जानती है, आदमियों का शिकार करना ही मेरा काम है। मैंने अनेक आदमियों का शिकार किया है।”

अब निमी भी क्रोध में आई। बोली—“खूब किया! अपनी पी का त्याग कर दिया और आदमियों की जान ली। क्या समझते हो, इससे मैं मान जाऊंगी? बहुत करोगे मारोगे, लेकिन मैं डरनेवाली नहीं हूँ! तुम जिस बाप के लड़के हो, मैं भी उसी बाप की लड़की हूँ। आदमियों का खून करने में यदि बड़ाई की बात हो, तो मुझे भी मारकर बड़ाई प्राप्त करो।”

जीवानंद हंसकर बोले—“अच्छा बुला ला- किस पापिनी को बुलाएगी-जा बुला! लेकिन देख आज के बाद कहेगी तो उस साले के भाई व साले को सिर मुंडाकर गदहे पर चढ़ाकर गांव के बाहर निकलवा दूंगा।”

निमी ने मन ही मन सोचा—“हुई न मेरी जीत यह सोचती हुई वह घर के बाहर निकल गई। इसके बाद पास ही एक झोपड़ों में वह जा घुसी। कुटी में सैकड़ों पैबन्द लगे हुए कपड़े पहने, रुक्ष-केशी एक युवती बैठी

चरखा कात रही थी। निमाई ने जाकर कहा-“भाभी! जल्दी करो।” भाभी ने कहा-“जल्दी क्या?” नन्दोई ने तुझे मारा है, तो उनके सर में तेल मलना है क्या?”

निमी-“बात ठीक है। घर में तेल है?”

उस युवती ने तेल की शीशी सामने खिसका दी। निमाई ने झट अंजली में ऊँड़ेलकर उस युवती के रूखे बालों में लग दिया। इसके बाद झट जूड़ा बांध दिया। फिर चपत जमाकर बोली-“तेरी ढाके-वाली साड़ी कहाँ रखी है, बोल?” उस स्त्री ने कुछ आश्चर्य से कहा-“क्यों जी! कुछ पागल हो गई हो क्या?”

निमाई ने एक मीठा घूँसा जमाकर कहा -“निकाल साड़ी जल्दी!”

तमाशा देखने के लिए युवती ने भी साड़ी बाहर निकाल दी। तमाशा देखने के लिए क्योंकि इतनी तकलीफ पड़ने के बाद भी उसका सदा प्रफुल्ल रहनेवाला हृदय अभी भी वैसा ही था। नवयोवन-फूले कमल-जैसा उसकी नई उम्र का यौवन-तेल नहीं, सजावट नहीं, आहार नहीं, फिर भी उसी मैली पैबन्दवाली धोती के अंदर से भी वह प्रदीप्त, अनुपमेय सौन्दर्य फूट पड़ता था। वर्ण में छायालोक की चंचलता, नयनों में कटाक्ष, अधरो पर हंसी, हृदय में धैर्य-मेघ में जैसे बिजली, जैसे हृदय में प्रतिमा, जैसे जगत के शब्दों में संगीत और भक्तके मन में आनंद होता है, वैसा ही उस रूप में भी कुछ अनिर्वचनीय गौरव भाग, अनिर्वचनीय प्रेम, अनिर्वचनीय भक्ति। उसने हंसते-हंसते (लेकिन उस हंसी को किसी ने देखा नहीं) साड़ी निकाल दी। बोली-“निमी! भला बात तो, क्या होगी।”

निमी बोली-“दादा आये है। तुझे बुलाया है।”

उसने कहा-“अगर मुझे बुलाया है तो साड़ी क्या होगी? चल इसी तरह चलूंगी।” युवती कहती जाती थी-“कभी कपड़े न बदलूंगी।” चल, इसी तरह मिलना होगा। आखिर किसी तरह भी उसने कपड़े बदले नहीं। अंत में दोनों कुटी के बाहर आईं। निमाई को भी राजी होना पड़ा। निमाई भाभी को लेकर अपने घर के दरवाजे तक आ गईं। इसके बाद भाभी को अंदर का उसने दरवाजा बंद कर लिया और स्वयं बाहर खड़ी रही।

उस स्त्री की उम्र यही कोई पच्चीस वर्ष के लगभग है, लेकिन देखने में निमाई से अधिक उम्र की नहीं जान पड़ती। मैले पैबंद की धोती पहनकर भी, जब वह घर में घुसी तो जान पड़ा कि जैसे घर में उजाला हो गया। जान पड़ा, जैसे बहुतेरी कलियों का गुच्छा पत्तों से ढंका रहने पर भी, पत्ते हटते ही खिल उठा हो मानो गुलाब-जल की शीशी एकाएक मुंह खुल जाने से महक गयी हो-सुलगती हुई आग में जैसे किसी ने धूप-धूना छोड़ दिया हो और कमरे का वातावरण ही बदल जाए। पहले तो घर में घुसकर स्त्री ने पति को देखा नहीं, फिर एकाएक निगाह पड़ी कि आंगन में लगे छोटे आम के नीचे खड़े होकर जीवानंद रो रहे हैं। सुंदरी ने धीरे-धीरे उनके पास पहुंचकर उनका हाथ पकड़ लिया। यह कहना भूल गया कि उनकी आंखों में जल नहीं आया। भगवान ही जानते हैं कि उसकी आंखों से आंसू की वह धारा निकलती कि शायद जीवानंद उसमें डूब जाते। लेकिन युवती ने अपनी आंखों में आंसू नहीं आने दिए। जीवानंद का हाथ पकड़कर उसने कहा-“छिः! छिः! रोते क्यों हो? मैं समझी कि तुम मेरे लिए रोते हो। मेरे लिए न रोना! तुमने मुझे जिस तरह रखा है, मैं उसी में सुखी हूँ।”

जीवानंद ने माथ उठाकर आंसू पोंछते हुए स्त्री से पूछा-“शांति! तुम्हारे शरीर पर यह सैकड़ों पैबन्द की धोती क्यों है? तुम्हें तो खाने-पहनने की कोई तकलीफ नहीं है!”

शांति ने कहा-“तुम्हारा धन तुम्हारे ही लिए है? रुपये लेकर क्या करना चाहिए, मैं नहीं जानती। जब तुम आओगे- जब तुम मुझे ग्रहण करोगे.....”

जीवानंद-“ग्रहण करूंगा-शांति! मैंने क्या तुम्हे त्याग दिया है?”

शांति-“त्याग नहीं, जब तुम्हारा व्रत पूरा होगा, जब तुम फिर मुझे प्यार करोगे.....”

बात समाप्त होने के पहले ही जीवानंद ने शांति के छाती से लगा लिया और उसके कंधो पर माथा रख बहुत देर तक चुप रहे। इसके बाद एक ठंडी सांस लेकर बोले-“क्यो मुलाकात की?”

शांति -“क्या तुम्हारा व्रत भंग हो गया?”

जीवानंद-“हो व्रत भंग, उसका प्रायश्चित भी है। उसके लिए शोक नहीं है। लेकिन तुम्हे देखकर तो फिर लौटते नहीं बन पड़ता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सारा संसार, व्रत-होम, योग-यज्ञ यह सब एक तरफ है और दूसरी तरफ तुम हो। मैं किसी तरह भी समझ नहीं पाता हूँ कि कौन-सा पलड़ा भारी है? देश तो अशांत है, मैं देश लेकर क्या करूंगा। तुम्हारे साथ एक बीघा भूमि लेकर भी बड़े आनंद से मेरा जीवन बीत सकता है। तुम्हे लेकर मैं स्वर्ग गढ़ सकता हूँ। क्या करना है मुझे देश लेकर? देश की उस संतान का अभाग्य है जो तुम्हारी जैसी गृहलक्ष्मी प्राप्त कर भी सुखी हो न सके। मुझसे बढ़कर देश में कौन दुःखी होगा? तुम्हारे शरीर पर ऐसा कपड़ा देखकर मुझे लोग देश मे सबसे दरिद्र ही समझेंगे। मेरे सारे धर्मों की सहायता तो तुम हो उसके सामने फिर सनातन-धर्म क्या है? मैं किस धर्म के लिए देश-देश, वन-वन बंदूक कंधे पर लेकर प्राणी-हत्या कर इस पाप का भार संग्रह करूँ? पृथ्वी संतानो की होगी या नहीं, कौन जानता है? लेकिन तुम मेरी हो- तुम पृथ्वी से भी बड़ी हो- तुम्ही मेरा स्वर्ग हो। चलो घर चले, अब वापस न जाऊंगा!”

शांति कुछ देर तक बोल न सकी। इसके बाद बोली-“छीः! तुम वीर हो-मुझे इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा सुख यही है कि मैं वीर-पत्नी हूँ! तुम अधम स्त्री के लिए वीर-धर्म का परित्याग करोगे? तुम अपने वीर-धर्म का कभी परित्याग न करना! देखो मुझे एक बात बताते जाओ, इस व्रत के भंग का प्रायश्चित क्या है?”

जीवानंद ने कहा-“प्रायश्चित है-दान, उपवास-12 कानी कौड़ियां।”

शांति मुस्कराई और बोली-“जो प्रायश्चित हैं मैं जानती हूँ। लेकिन एक अपराध पर जो प्रायश्चित है- वही क्या शत अपराधो पर भी है?”

जीवानंद ने विस्मित और विवश होकर कहा-“लेकिन यह सब क्यो पूछती हो?”

शांति-“एक भिक्षा है। कहो- मेरे साथ बिना मुलाकात किए प्रायश्चित न करोगे!”

जीवानंद हंसकर कहा-“इस बारे में निश्चित रहो- बिना तुम्हे देखे, मैं न मरूंगा। मरने की ऐसी कोई जल्दी भी नहीं है। अब मैं अधिक यहां न ठहरूंगा, लेकिन आंख भरकर तुम्हे देख न सका। फिर भी एक दिन अवश्य देखूंगा। एक दिन हम लोगो के मन की कामना जरूर पूरी होगी! मैं अब चला तुम मेरे एक अनुरोध की रक्षा करना- इस वेश-भूषा का त्याग कर दो। मेरे पैतृक मकान मे जाकर रहो।”

शांति ने पूछा-“इस समय कहां जाओगे?”

जीवानंद-“इस समय मठ में ब्रह्मचारीजी की खोज में जाऊंगा। वे जिस भाव से नगर गए हैं, उससे कुछ चिंता होती है। मठ मे मुलाकात न हुई तो नगर जाऊंगा।”

भवानंद मठ मे बैठे हुए हरिगान मे तल्लीन थे, ऐसे ही समय दुःखी चेहरे से ज्ञानानन्द नामक एक तेजस्वी संतान उनके पास आ पहुंचे। भवानंद ने कहा-“गोस्वामी! चेहरा इतना उतरा हुआ क्यो है?”

ज्ञानानंद ने कहा-“कुछ गड़बड़ी जान पड़ती है। कल के कांड से सरकारी आदमी जिसे हल्दी-गेरुआ वस्त्रधारी देखते हैं, उसे गिरफ्तार कर लेते हैं। करीब-करीब सभी संतानो ने आज अपना गैरिक वस्त्र उतार दिया है।

केवल सत्यानंद प्रभु गेरुवा पहने हुए ही शहर की तरफ गए हैं। कौन जाने कही मुसलमानो के हथ पड़ जाए!”

भवानंद बोले-“उन्हे बंदी कर रखे, बंगाल में अभी ऐसा कोई मुसलमान नहीं है। मैं जानता हूँ, धीरानंद उसके

पीछे-पीछे गए हैं। फिर भी मैं एक बार नगर घूमने जाता हूँ, मठ की रक्षा तुम्हे सौंप जाता हूँ।” यह कहकर भवानंद स्वामी ने एक अलग कोठरी में जाकर कितने ही तरह के कपड़े निकाले। भवानंद जब उस कोठरी से निकले तो उन्हें पहचानना कठिन था। गेरुआ वस्त्रों के बदले इनके पैरों में चूड़ीदार पायजामा, शरीर पर अचकन, माथे पर कंगूरेदार पगड़ी और पैरों में नागौरी जूता था। अब उनके ललाट पर का चंदन-त्रिपुण्ड साफ हो गया था, उनका चेहरा अपूर्व शोभा पा रहा था। उन्हें देखने से किसी पठान जातीय मुसलमान का ही भान होता था। इस तरह से सशस्त्र होकर भवानंद मठ के बाहर हुए। मठ के कोई एक कोस उत्तर दो छोटी पहाड़ियां बगल-बगल में थीं। पहाड़ी जंगल से भरी हुई थीं। वही एक निर्जन स्थान में संस्थानों की अश्वशाला थी। भवानंद ने वहां से एक घोड़ा निकाला और जीन आदि कसवाकर उस पर सवार हो, सीधे राजधानी की तरफ चल पड़े।

जाते-जाते एकाएक उनकी गति में बधा पड़ी। उसी राह की बगल में नदी के किनारे वृक्ष के नीचे उन्होंने आकाश से गिरी बिजली की तरह दीप्तिमान एक स्त्री को पड़ी हुई देखा। उन्होंने देखा, उसमें जीवन के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते- विष की खाली डिब्बियां पास में पड़ी हुई हैं। भवानंद विस्मित, क्षुब्ध और भीत हुए। भवानंद की तरह भवानंद ने भी महेन्द्र की स्त्री-कन्या हो सकती हैं, भवानंद के सामने संदेह के लिए वे कारण भी न थे- उन्होंने ब्रह्मचारी और महेन्द्र को बंदी रूप में ले जाते भी देखा न था। कन्या भी वहां न थी। केवल डिब्बियां देखकर उन्होंने समझा कि इस स्त्री ने विष खाकर आत्म-हत्या की है। भवानंद उस शव के पास बैठ गए, बैठकर उसके माथे पर हाथ रखकर बहुत देर तक परीक्षा करते रहे। नाड़ी-परीक्षा, हृदय-परीक्षा आदि अनेक प्रकार से और दूसरे अपरिज्ञात तरीकों से परीक्षा कर मन-ही-मन कहा-“अभी मरी नहीं है-अभी भी समय है-बचाई जा सकती है। लेकिन बचाकर करना भी क्या है? इस तरह कुछ क्षण तक विचार करते रहे और इसके बाद वे उठकर एकाएक वन के अंदर चले गए। वहां से वे एक लता की थोड़ी पत्ती तोड़ लाए। उसी पत्ती को हथेली पर मसलकर उन्होंने रस निकाला और अंगुलियों से दांत खोल रस को मुंह में टपकाया कान में डाला और थोड़ा मस्तक पर मल दिया। इसके बाद थोड़ा रस उन्होंने नाक में भी डाल दिया। इसी तरह उन्होंने बार-बार किया और बीच-बीच में नाक के पास हाथ ले जाकर देखते जाते थे कि कुछ श्वास चली या नहीं। पहले-पहल तो भवानंद को निराशा होने लगी, लेकिन इसके बाद उनका मुंह प्रसन्नता से खिल उठा- अंगुली में निश्वास की हलकी अनुभूति हुई। उत्साहित हो उन्होंने बारम्बार वही प्रक्रिया की, अब श्वास मजे में आने-जाने लगी। नाड़ी देखी चल रही थी। इसके बाद ही क्रमशः प्रभात-कालीन अरुणोदय की तरह, प्रभात के समय कमल खिलने की तरह, प्रथम प्रेमानुभव की तरह कल्याणी अपनी आंखें खोलने लगी। यह देखकर भवानंद ने कल्याणी के अर्धजीवित शरीर को घोड़े पर रखा और स्वयं पैदल ही नगर की तरफ निकल गए।”

संध्या होने के पहले ही सन्तान सम्प्रदाय के सभी लोगो ने यह जान लिया कि महेन्द्र के साथ सत्यानन्द स्वामी गिरफ्तार होकर नगर की जेल में बन्द हैं। इसके बाद ही एक एक दो-दो दस-दस सौ-सौ हजार-हजार की संख्या में आकर संतानगण उसी मठ की चहारदीवारी से संलग्न वन में एकत्रित होने लगे। सभी सशस्त्र थे। सबकी आंखों से क्रोध की अग्नि निकल रही थी, चेहरे पर दृढ़ता और होठों पर प्रतिज्ञा थी। उन लोगो के काफी संख्या में जुट जाने पर मठ के फाटक पर हाथ में नंगी तलवार लिए हुए स्वामी ज्ञानानन्द ने गगन भेदी स्वर में कहा- “अनेक दिनो से हम लोग विचार करते आते हैं कि इस नवाब का महल तोड़कर यवनपुरी का नाश कर नदी के जल में डुबा देगे- इन सूअरों के दांत तोड़कर इन्हे आग में जलाकर माता वसुमती का उद्धार करेंगे। भाइयों! आज वही दिन आ गया है। हम लोगो के गुरु के भी गुरु परमगुरु जो अनन्त ज्ञानमय सदा शुद्धाचारी, लोकहितैषी और देश हितैषी हैं- जिन्होंने सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिए आमरणव्रत लिया

है, प्रतिज्ञा की है- जिन्हे हम विष्णु के अवतार के रूप में मानते हैं, जो हमारी मुक्ति के आधार हैं- वही आज म्लेच्छ मुसलमानों के कारागार में बन्दी है। क्या हम लोगों की तलवार पर धार नहीं है?

बांह फैलाकर ज्ञानानंद ने कहा-“इन बाहुओं में क्या बल नहीं है? छाती ठोकर बोले- “क्या इस हृदय में साहस नहीं? भाइयो! बोलो-हरे मुरारे मधुकैटभारे! जिन्होंने मधुकैटभ का विनाश किया है जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल आदि दुर्जय असुरों का निधन-साधन किया है, जिनके चक्र के प्रचण्ड निर्घोष से मृत्युंजय शंकर भी भयभीत हुए थे जो अजेय हैं रण में विजयदाता हैं हम उन्हीं के उपासक हैं, उनके ही बल से हमारी भुजाओं में अनन्त बल है- वह इच्छामय है उनके इच्छा करते ही हम रण- विजयी होंगे। चलो, हम लोग उस यवनपुरी का निर्दलन कर उसे धूल में मिला दें। उरा शूकर निवास को अग्नि से शुद्ध कर नदी-जल में धो दें, उसका जर्जर उड़ा दें। बोलो- हरे मुरारे मधुकैटभारे!”

इसके साथ ही उस कानन में भीषण, आकाश कंपानेवाले वज्रनिर्घोष जैसी आवाज गूंज उठी- हरे मुरारे मधुकैटभारे!

इसके साथ ही उस कानन में भीषण आकाश कंपानेवाले वज्रनिर्घोष जैसी आवाज गूंज उठी- हरे मुरारे मधुकैटभारे!

सहस्रों कंटों के निर्घोष से आकाश कांपा, वसुन्धरा डगमगायी। सहस्रों बाहुओं के घर्षण से असीम निनाद हुआ- हजारों ढालों की आवाज से कानों के पर्दे फटने लगे। कोलाहल करते हुए पशु पक्षी जंगल से निकलकर भागे। इस तरह जंगल से श्रेणीबद्ध शिक्षित सेना की तरह सन्तानगण निकल पड़े। वह लोग मुंह से हरिनाम कहते हुए, मिलित पद- विक्षेप से नगर की तरफ चले। उस अंधेरी रात में पतों का मर्मर शब्द, अस्त्रों की झनकार, कण्ठों का अस्फुट स्वर, बीच-बीच में तुमुल स्वर में हरिनाम का जयघोष! धीरे-धीरे, तेजस्वितापूर्वक सरोष सन्तान-वाहिनी ने नगर में आकर नगर को त्रस्त कर दिया। इस अकस्मात् ब्रजाघात से नागरिक कहां किधर भागे, पता न लगा। नगर- रक्षक हतबुद्धि हो निश्चेष्ट हो गये।

इधर सन्तानों ने पहुंचते ही पहले राजकारागार में पहुंचकर उसे तोड़ डाला, रक्षकों को चटनी बना दिया और सत्यानन्द तथा महेन्द्र को मुक्त कर कन्धों पर चढ़ाकर संतानगण आनन्द से नृत्य करने लगे। हरिकीर्तन का अद्भुत दृश्य उपस्थित हो गया। महेन्द्र और सत्यानन्द करे मुक्त कर संतानों ने जहां-जहां मुसलमानों का घर पाया, आग लगा दी। यह देखकर सत्यानन्द ने कहा-“अनर्थक अनिष्ट की आवश्यकता नहीं। चलो, लौट चलो।” नगर के अधिकारियों ने संतानों का यह उपद्रव सुनकर सिपाहियों का एक दल उनके दमन के लिए भेज दिया। उनके पास केवल बंदूकें ही नहीं थीं। एक तोप भी साथ में थी। यह खबर पाते ही सन्तानगण आनन्द कानन से पलट पड़े, लेकिन लाठी, तलवार और छुरों से क्या हो सकता है? तोप के सामने ये लोग पराजित होकर भाग गये।

शान्ति को बहुत थोड़ी ही उम्र में, बचपन में ही मातृवियोग हो गया था। जिन उपादानों से शान्ति का चरित्र-गठन हुआ है, उनमें एक यह प्रधान है। उसके पिता एक ब्राह्मण अध्यापक थे। उनके घर में और कोई स्त्री नहीं थी।

शान्ति के पिता जब पाठशाला में बालकों को पढ़ाते थे, तो स्वभावतः उनकी बगल में शान्ति भी आकर बैठती थी। कितने ही छात्र तो पाठशाला में ही रहते थे; अन्य समय में शान्ति भी उन्हीं में मिलकर खेला करती थी। कभी उनकी पीठ पर चढ़ती थी, कभी गोद में बैठ खेला करती थी। वे लोग भी शान्ति का आदर करते थे।

इस तरह बचपन से ही पुरुष-साहचर्य का प्रथम प्रतिफल तो यह हुआ कि शान्ति ने लड़कियों की तरह कपड़े पहनना सीखा, या सीखा भी तो वह ढंग परित्याग कर दिया- लड़कों की तरह कछाड़ा मारकर धोती पहनने लगी। अगर कोई उसे लड़कियों की तरह कपड़े पहना देता था, तो वह तुरंत उसे खोल देती थी और

फिर कछाड़ा मारकर पहन लेती थी। पाठशाला के बालक कभी जूड़ा बांधते न थे, अतः वह न तो चोटी करती थी और न जूड़ा ही। फिर उसे जूड़ा बांध ही कौन देता? घर में कोई औरत तो थी नहीं। पाठशाला के छात्र बांस की फर्राटी में उसके बाल फंसा देते थे और उसके घुंघराले बाल वैसे ही पीठ पर लहराया करते थे। विद्यार्थी ललाट पर चन्दन और भस्म लगाते थे; अतः शान्ति भी चन्दन-भस्म लगाया करती थी। गले में यज्ञोपवीत पहनने के लिए भी शान्ति बहुत रोया करती थी। फिर भी, संध्यादि नैमित्तिक नियमों के समय वह अवश्य उनके पास बैठकर उनका अनुकरण किया करती थी। अध्यापक की अनुपस्थिति के समय लड़कों ने उसे अश्लील दो-एक संकेत सिखा दिये थे और वे आपस में जो कहानियाँ कहा करते थे, तोते की तरह शान्ति ने भी उन्हें रट डाला था- भले ही उसका कोई अर्थ न जानती हो।

दूसरा फल यह हुआ कि बड़ी पर शान्ति, लड़के जो पुस्तकें पढ़ा करते थे- उन्हें अनायास ही पढ़ने लगी। वह व्याकरण का एक अक्षर भी जानती न थी, लेकिन भट्टि काव्य, रघुवंश, कुमारसंभव, नैषधादि के श्लोक व्याख्या के साथ उसने रट डाले थे। यह देखकर शान्ति के पिता ने उसे थोड़ा प्राथमिक व्याकरण भी पढ़ाना शुरू किया। शान्ति भी शीघ्र से शीघ्र सीखने लगी। अध्यापक भी बड़े विस्मित हुए। व्याकरण के साथ उन्होंने कुछ साहित्य भी उसे पढ़ाया। इसके बाद ही सब गोलमाल हो गया, शान्ति के पिता का स्वर्गवास हो गया।

अब शान्ति निराश्रय हो गयी। पाठशाला भी उठ गयी, छात्र चले गये। लेकिन वे सब शान्ति को प्यार करते थे, अतः उनमें से एक शान्ति को अपने घर ले गया। इसी छात्र ने बाद में सन्तान-सम्प्रदाय में नाम लिखाकर अपना नाम जीवानन्द रखा। हम उन्हें जीवानन्द ही कहेंगे।

उस समय जीवानन्द के माता-पिता जीवित थे। उनको जीवानन्द ने कन्या का विशेष परिचय दिया। पिता-माता ने पूछा- “लेकिन अब परायी लड़की का भार अपने ऊपर लेगा कौन?” जीवानन्द ने कहा- “मैं ले आया हूँ, इसका भार मैं ही लूँगा!” माता-पिता ने भी कहा - ठीक है। जीवानन्द कुंवारे थे, उन्होंने शान्ति के साथ शादी कर ली। विवाह के उपरान्त सभी लोग इस सम्बन्ध पर पछताने लगे। सब लोग समझे- “तो ठीक नहीं हुआ!” शान्ति ने किसी तरह भी लड़कियों के समान धोती न पहनी, किसी तरह भी वह चोटी बांधने को तैयार न हुई। वह घर में भी अधिक रहती न थी, पड़ोस के लड़कों के साथ बाहर खेला करती थी। जीवानन्द के घर के पास ही जंगल है। शान्ति उस जंगल में अकेली घुसकर कहीं मोरो, कहीं हरिणों और कहीं सुंदर फूलों की खोज में घूमा करती थी। सास-ससुर ने पहले तो मना किया, फिर डांट-फटकार की, इसके बाद मारा-पीटा और अन्त में कोठरी में बन्द कर दिया। इस डांट-डपट से शान्ति बड़ी क्रुद्ध हुई। एक दिन दरवाजा खुला देखकर वह बाहर निकली और बिना किसी से कहे-सुने कहीं चली गयी।

जंगल के अन्दर टेसू के फूलों को लेकर उनसे शान्ति ने अपने कपड़े रंग डाले और खासी साधुनी बन गयी। उस समय बंगाल में दल के दल संन्यासी घूमा करते थे। शान्ति भी भिक्षा मांगती-खाती जगन्नाथ क्षेत्र की राह में निकल गयी। थोड़े ही दिनों बाद उसे संन्यासियों का दल मिल गया; वह भी उन्हीं में मिल गयी।

उस समय के संन्यासी आजकल जैसे न होते थे- सुशिक्षित बलिष्ठ युद्ध विशारद एवं अन्यान्य गुणों से गुणवान होते थे। वे लोग वस्तुतः एक तरह के राजविद्रोही होते थे- राजाओं का राजस्व लूटकर खाते थे। बलिष्ठ बालक पाते ही उनका अपहरण करते थे, उन्हें शिक्षित कर अपने सम्प्रदाय में मिला लिया करते थे। इसलिए लोग उन्हें ‘लकड़-पकड़वा’ या ‘लकड़ सुँघवा’ भी कहते थे।

शान्ति बालक संन्यासी के रूप में उनमें मिली थी। संन्यासी लोग पहले कोमल देह देखकर उसे दल में मिलाते न थे; लेकिन शान्ति की बुद्धि-प्रखरता, चतुरता और कार्यदक्षता देखकर आदरपूर्वक उन्होंने उसे अपने दल में मिला लिया। शान्ति उनके दल में मिलकर व्यायाम करती थी, अस्त्र चलाना सीखती थी, अतः परिश्रम-

सहिष्णु हो उठी। उनके साथ उसने देश- विदेश का भ्रमण किया, अनेक लड़ाइयां देखी और अस्त्र-विद्या में निपुण हो गयी।

क्रमशः उसके यौवन के लक्षण प्रकट होने लगे। अनेक संन्यासियों ने जान लिया कि यह छद्मवेश में स्त्री है। लेकिन अधिकतर संन्यासी उस समय जितेन्द्रिय होते थे, इसलिये किसी ने ध्यान न दिया।

संन्यासियों में अनेक विद्वान भी थे। शांति को संस्कृत में कुछ ज्ञान है, यह देखकर एक संन्यासी उसे पढ़ाने लगा-लेकिन क्या काबुल में गधे नहीं होते? जितेन्द्रिय संन्यासियों में वह संन्यासी कुछ दूसरे ढंग का था। या हो सकता है कि शांति का अभिनव यौवन-सन्दर्भ देखकर वह संन्यासी अपनी इन्द्रियों द्वारा परिपीड़ित होकर अपने को वश में न रख सका हो। अतः वह अपनी शिष्या को श्रृंगार रस के काव्य पढ़ाने लगा और उनकी व्याख्या खोलकर अश्राव्य रूप में सुनाने लगा। उससे शान्ति का अपकार न होकर कुछ उपकार ही हुआ। लज्जा किसे कहते हैं, शान्ति ने यह सीखा ही न था; अब व्याख्या सुनकर स्त्री-स्वभाववश स्वतः उसमें लज्जा का उदय हुआ। पुरुषचरित के ऊपर निर्मल स्त्री-चरित्र की अपूर्व प्रभा उस पर छा गयी-उसने शान्ति के गुणों को समाधिक बढ़ा ही दिया। शान्ति ने पढ़ना छोड़ दिया।

व्याधा जैसे हरिण के पीछे दौड़ता है, वैसे ही वह संन्यासी शान्ति को देखकर उसके पीछे दौड़ता था। किन्तु शान्ति ने व्यायाम आदि के कारण पुरुष-दुर्लभ बल-संचय किया था। अध्यापक के समीप आते ही वह उन्हे जोर के घूंसे और लात जमाती थी, जो साधारण न होते थे। एक दिन एकान्त होकर संन्यासी ने बड़ा जोर लगातार शान्ति का हाथ पकड़ लिया। शान्ति हाथ छुड़ा न सकी। लेकिन संन्यासी ने दुर्भाग्यवश शान्ति का बायां हाथ पकड़ा था, अतः दाहिने हाथ से शान्ति ने संन्यासी के सिर में इस जोर का घूंसा जमाया कि संन्यासी कटे पेड़ की तरह धड़ाम से चकराकर गिर पड़े। शान्ति ने संन्यासी सम्प्रदाय का त्याग कर पलायन किया।

शान्ति निर्भय थी, अकेली अपने गांव की तरफ चल पड़ी। साहस और बाहुबल से वह निर्विघ्न यात्रा करती रही। भिक्षा मांगकर और जंगली कन्द-मूल आदि फलों से अपनी क्षुधा मिटाती वह अनेक आपदाओं में विजय-लाभ करती अपने ससुराल आ पहुंची। उसने देखा, श्वसुर का स्वर्गवास हो गया है; लेकिन सास ने उसे घर में स्थान न दिया-जाति जाने का डर था। शान्ति तुरन्त बाहर निकल गयी।

जीवानन्द घर में ही थे। उन्होंने शान्ति का पीछा और उसे राह में पकड़कर पूछा-“तुम मेरा घर छोड़कर कहां चली गयी थी? इतने दिनों तक कहां रही?” शान्ति ने सारी सच्ची बातें कह दीं। जीवानन्द को सच-झूठ की परख थी। उसने शान्ति की बात का विश्वास किया।

अप्सरसों के भ्रूविलास से युक्त कटाक्ष-ज्योति द्वारा निर्मित जो काम-शेर हैं, उसका अपव्यय-पुष्प घन्वा मदनदेव विवाहित दम्पतियों के प्रति नहीं किया करते। अंगरेज पूर्णिमा की रात को भी शाही राह पर गैस या बिजली जताते हैं, बंगाली देह में लगाने वाले तेल का ढाल देते हैं; मनुष्यों की बात तो दूर है, सूर्य देव के उदय के बाद भी कभी-कभी चन्द्रदेव आवास में उदित रहते हैं, इन्द्र सागर पर भी वृष्टि करता है; जिस सन्दूक में छिपाकर धनराशि रखी रहती है, कुबेर उसी सन्दूक से धन ले जाते हैं; यमराज जिसके घर से सबको ले गये रहते हैं, प्रायः उसी घर के बच्चे हुए लोगों से दृष्टि डालते हैं, केवल रतिप्रति ऐसी निर्बुद्धिता नहीं करते-जहां वैवाहिक गांठ बंध जाती है, वहां फिर वे परिश्रम नहीं करते-प्रजापति को सारा भार देकर, जहां किसी के हृदय के रक्त को उत्तेजित कर सके, मदनदेव वही जाते हैं। लेकिन आज तो जान पड़ता है पुष्पधन्वाको और कोई काम था-एकाएक उन्होंने दो पुष्पवाणों का अपव्यय किया-एक ने आकर जीवानन्द के हृदय को वेध दिया-दूसरे ने शान्ति के हृदय में प्रवेश कर उसे बता दिया यह स्त्रियों का कोमल हृदय है। नवमेघ से छलके प्रथम जलकणों से भीगी पुष्पकलिका की तरह शान्ति सहसा खिलकर जीवानन्द के मुंह के तरफ निहारती रही।

जीवानन्द ने कहा- “मैं तुम्हें परित्याग न करूंगा। मैं जब तक लौटकर न आऊं, तुम यही खड़ी रहना।”
शांति ने पूछा-“तुम लौटकर आओगे न?”

जीवानन्द और कोई उत्तर न देकर, और किसी की परवाह न कर, राह की बगल में नारियल वृक्षों की छाया में शांति के अधरो पर अधर रख, सुधपान कर चले गये।

माता को समझा-बुझाकर और विदा लेकर जीवानन्द तुरंत लौट आये। हाल में ही जीवानन्द की बहन निमाई की शादी भैरवीपुर में हुई थी। बहनोई के साथ जीवानन्द का प्रेम था। जीवानन्द शांति को लेकर वही गये। बहनोई ने उन्हें थोड़ी जमीन दी; जीवानन्द ने उस पर एक कुटी का निर्माण किया और वही शांति के साथ सुखपूर्वक रहने लगे। स्वामी के सहवास में शांति का पुरुष भाव धीरे-धीरे गायब होने लगा। सुख स्वप्न की तरह उनका जीवन बीतने लगा। लेकिन सहसा वह सुख स्वप्न भंग हो गया- सत्यानन्द के हाथ में पड़कर जीवानन्द सन्तान धर्म ग्रहण कर शान्ति का परित्याग कर चले गये। पतित्याग के बाद यह प्रथम मिलन निमाई के प्रयत्न से हुआ, जिसका वर्णन पूर्व परिच्छेद में हो चुका है।

जीवानन्द के चले जाने पर शान्ति निमाई के दरवाजे पर जा बैठी। निमाई गोद में लड़की को लेकर उसके पास आ बैठी। शांति की आंखों में नहीं है, उसने उन्हें पोंछ डाला है, बल्कि चेहरे पर मधुर मुस्कराहट है। फिर भी वह कुछ तो गम्भीर चिन्तायुक्त अनमनी सी दिखाई पड़ती ही है, उसे देखकर निमाई बोली- “मुलाकात तो हो गयी न?” शान्ति ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह चुप रही। निमाई ने देखा कि शान्ति किसी तरह मन का भाप न बताएगी। शान्ति मन की बताना पसन्द भी नहीं करती, यह जानती हुई भी निमाई ने बात का ढर्रा उठाया, बोली- “बता दो भाभी! यह कन्या कैसी है?”

शान्ति ने कहा- “यह लड़की कहां से पायी -तेरे लड़की कब हुई रे।”

“मेरी नहीं, दादा की है।”

निमाई ने शान्ति को जलाने के लिए यह बात कही थी, “दादा की लड़की” माने यह कि उसने भाई से यह लड़की पायी है। लेकिन शान्ति ने यह न समझा कि निमाई उसे चिढ़ाने के लिए कह रही है। अतएव शान्ति ने उत्तर दिया -“मैं लड़की के बाप की बात नहीं पूछती हूं, मैं यह पूछती हूं कि इस लड़की की मां कौन है?”

निमाई उचित दण्ड पाकर अप्रतिभ होकर बोली-“कौन जाने किसकी लड़की है, दादा क्या जाने कहां से पकड़कर उठा लाये हैं - पूछने का भी अवसर न मिला। आजकल अकाल के दिनों में कितने लोग लड़के-बच्चे फेंक जाते हैं। मेरे ही पास कितने लोग अपनी सन्तान बेचने के लिए आये थे। लेकिन दूसरों के बाल-बच्चों को ले कौन?” (फिर उन आंखों में सहसा जल भर आया और निमाई ने उसे पोंछ डाला) “लड़की है बड़ी सुन्दर! भोली-भाली, गोरी-चिट्ठी देखकर दादा से मैंने मांग ली है।”

इसके बाद शान्ति की निमाई के साथ अनेक तरह की बातें होने लगी। फिर निमाई के पति को घर लौट आते देख शान्ति उठकर कुटी में चली गयी।

कुटी में पहुंचकर उसने अपना दरवाजा बन्द कर लिया। इसके बाद चूल्हे की जितनी राख वह बटोर सकी, बटोर ली। बची हुई राख के ऊपर जो अपने खाने के लिए उसने चावल पका रखे थे, उन्हें भी वहां से हटा दिया। इसके उपरान्त बहुत देर तक सोच में पड़ी रही और फिर आप-ही-आप बोली- “इतने दिनों से जो सोच रखा था, आज वही करूंगी। जिस आशा से इतने दिनों तक नहीं किया, आज सफल हुई-सफल क्यों, निष्फल-निष्फल! यह जीवन ही निष्फल है। जो किया है वही करूंगी एक बार में जो प्रायश्चित्त है, वही सौ बार में भी

है।”

यह सोचती हुई शान्ति ने भात चूल्हे में फेंक दिया। जगल में से कन्द-मूल-फल ले आई और अन्न के बदले उन्ही को खाकर उसने अपना पेट भर लिया। इसके बाद उसने वही ढाका वाली साड़ी निकाली जिस पर निमाई का इतना आग्रह था। उसका किनारा उसने फाड़ डाला और शेष कपड़े को गेरू के रंग में रंग दिया। वस्त्र को रगते और सुखाते शाम हो गई। शाम हो जाने पर दरवाजा बन्द कर शान्ति बड़े तमाशे में लग गयी। माथे के आजानुलम्बित केशो का कुछ का कुछ अंश उसने कैंची से काट डाला और अलग रख दिया। बाकी बचे हुए उस कपड़े को उसने दो भागों में विभक्त कर दिया- एक तो उसने पहन लिया और दूसरे से अपने ऊपरी अंगो को ढंक लिया। इसके बाद उसने बहुत दिनों से काम में न लाया गया शीशा निकाला और उसमें अपना रूप देखते हुए सोचा-“हाय! मैं क्या करने जा रही हूँ?” इसके बाद ही दुःखी हृदय से वह अपने उन काटे हुए बालों को लेकर मूँछ और दाढ़ी बनाने लगी। लेकिन उन्हे वह पहन न सकी। उसने सोचा- “छिः! यह क्या? अभी क्या इसकी उम्र है। फिर भी बुड्ढे को चरका देने के लिए इन्हे रख लेना अच्छा है?” यह सोचकर उसने छिपाकर उन्हे अपने पास रख लिया। इसके बाद घर में से एक बड़ा हरिणचर्म निकालकर उसने गले के पास उसे पहनकर गांठ दी और घुमाकर शरीर आवृत कर जंघों तक लटका लिया। इस तरह सज्जित होने के बाद इस नये संन्यासी ने घर में एक बार चारों तरफ देखा। आधी रात हो जाने पर, शान्ति ने इस प्रकार संन्यासी वेश में दरवाजा खोलकर अन्धकारपूर्ण गम्भीर वन में प्रवेश किया। वनदेवियों ने उस एकान्त रात में अपूर्व गायन सुना-

(बंगला यथावत)

(1)

“दूरे उड़ि घोड़ा चढ़ि कोथा तुमी जाओ रे,
समरे चलि तू आमि हाम ना फिरओ रे
हरि-हरि हरि-हरि बोलो रणरंगे
झांप दिबो प्राण आजि समर-तरंगे,
तुमि कार कि तोमार केलो एसो संगे,
रमण ते नाहिं साध, रणजय गाओ रे !”

(2)

पाये धरी प्राणनाथ आमा छेड़े जेओ ना,
एई सुनो, बाजे घन रणजय बाजना।
नापिछे तुरंग मोर रण करे कामना,
उड्डिलो आमार मन घरे आर रबो ना।
रमधी ते नाहिं साथ, रणजय गाओर !”

दूसरे दिन आनंदमठ के अन्दर एक कमरे में बैठे, निरुत्साह तीन संताननायक आपस में बातें कर रहे थे। जीवानन्द से सत्यानन्द से पूछा- “महाराज! ईश्वर हम लोगो पर इतने अप्रसन्न क्यों है? किस दोष से हम लोग मुसलमानों से पराभूत हुए?”

सत्यानंद ने कहा- “भगवान अप्रसन्न नहीं हैं। युद्ध में जय-पराजय दोनों होती हैं। उस दिन हम लोगो की विजय हुई थी, आज पराजय हुई है, अन्त में फिर जय है। हमें निश्चित भरोसा है कि जिन्होंने इतने दिनों तक

हमारी रक्षा की है, वे शंकर-वक्र-गदाधारी वनमाली फिर हमारी रक्षा करेंगे। उनके पदस्पर्श कर हम लोग जिस महाव्रत से व्रती हुए हैं, अवश्य ही उस व्रत की हम लोगो को साधना करनी होगी- विमुख होने पर हमें अनन्त नरक का भोग करना पड़ेगा। हम अपने भावी मंगल के बारे में निःसंदेह हैं। लेकिन जैसे देव-अनुग्रह के बिना कोई काम सिद्ध हो नहीं सकता, वैसे ही पुरुषार्थ की भी आवश्यकता होती है। हम लोग जो पराजित हुए उसका कारण था कि हम निःशस्त्र थे- गोली-बन्दूक के सामने लाठी, तलवार, भाला क्या कर सकता है! अतः हम लोग अपने पुरुषार्थ के न होने से हारे हैं। अब हमारा यही कर्तव्य है कि हमें भी अस्त्रों की कमी न हो।

जीवानन्द- “यह तो बहुत ही कठिन बात है।”

सत्यानन्द- “कठिन बात है, जीवानन्द? सन्तान होकर तुम मुंह से ऐसी बात निकालते हो? सन्तानों के लिए कठिन है क्या?”

जीवानन्द- “आज्ञा दीजिये, इनका संग्रह किस प्रकार होगा?”

सत्यानन्द- “संग्रह के लिए आज रात मैं यात्रा करूंगा। जब तक मैं लौटकर न आऊं, तब तक तुम लोग किसी भारी काम में हाथ न डालना। लेकिन सन्तानों का आपस की एकता की रक्षा करना, उनके भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करना- इसका भार तुम दोनों पर ही है।”

भवानन्द ने पूछा- “तीर्थयात्रा कर इन चीजों का संग्रह आप कैसे करेंगे? गोला-गोली, बन्दूक, तोप खरीदकर भेजवाने में बड़ा गोलमाल होगा; फिर आप इतना पाएंगे कहां, बेचेगा ही कौन, ले ही कौन आएगा?”

सत्यानन्द- “यह सब चीजें खरीदकर लाई जा नहीं सकती। मैं कारीगर भेजूंगा, यही तैयार करनी होगी।”

जीवानन्द- “क्या यही, इसी आनन्दमठ में?”

सत्यानन्द- “यह कैसे हो सकता है- इसके उपाय की चिन्ता मैं बहुत दिनों से कर रहा हूँ। भगवान ने अब उसका सुयोग उपस्थित कर दिया है। तुम लोग कहते थे- भगवान प्रतिकूल है, लेकिन मैं देखता हूँ कि भगवान अनुकूल है।”

भवानन्द- “कहां कारखाना खोलेंगे?”

सत्यानन्द- “पदचिन्ह में।”

जीवानन्द- “यह कैसे? वहां कैसे होगा?”

सत्यानन्द- “नहीं तो महेन्द्रसिंह को मैंने किसलिए व्रत ग्रहण करने को इतना तैयार किया है?”

भवानन्द- “महेन्द्र ने क्या व्रत ग्रहण कर लिया है?”

सत्यानन्द- “व्रत ग्रहण नहीं किया है, लेकिन आज ही रात में उसे दीक्षित करूंगा।”

जीवानन्द- “कैसे? महेन्द्र को व्रत ग्रहण करने के लिए क्या उपाय हुआ है- हम लोग नहीं जानते। उसकी स्त्री-कन्या का क्या हुआ? उन्हें कहां रखा गया? आज नदी किनारे मैंने एक कन्या पायी थी; उसे मैंने अपनी बहन के पास पहुंचा दिया है। उस कन्या के पास एक सुन्दर स्त्री मरी पड़ी हुई थी। वही तो महेन्द्र की स्त्री-कन्या नहीं थी? मुझे ऐसा ही भ्रम हुआ था।”

सत्यानन्द- “वही महेन्द्र की स्त्री-कन्या थी।”

भवानन्द चमक उठे अब वह समझ गये कि जिस स्त्री को उन्होंने पुनर्जीवित किया है, वही महेन्द्र की पी कल्याणी है। लेकिन उसकी कोई बात इस समय उठाना उन्होंने उचित न समझा।

जीवानन्द ने पूछा- “महेन्द्र की स्त्री मरी कैसे?”

सत्यानन्द- “जहर खाकर।”

जीवानन्द- “जहर क्यों खाया?”

सत्यानंद-“ भगवान ने स्वप्न में उसे प्राण-त्याग करने का आदेश किया था ।”

भवानंद-“ वह स्वप्नादेश क्या सन्तानों के कार्यों के लिए ही हुआ था ?”

सत्यानंद-“ महेन्द्र से मैंने ऐसा ही सुना है । अब संध्या समय उपस्थित है, मैं संध्यादि कृत्य के लिए जाता हूँ । इसके बाद नये सन्तानों की दीक्षा की व्यवस्था करूँगा ।”

भवानंद-“ सन्तानों की? क्या महेन्द्र के अतिरिक्त और भी कोई सन्तान-सम्प्रदाय में सम्मिलित हुआ चाहता है ?”

सत्यानंद-“ हाँ, एक और नय आदमी है । अब से पहले मैंने उसे कही देखा नहीं था । आज ही मेरे पास आया है । वह बहुत कोमल युवा पुरुष है । उसकी भाव-भंगी और बातों से मैं बहुत प्रसन्न हूँ- खरा सोना जान पड़ता है वह ! उसके संतान-कार्य की शिक्षा का भार जीवानंद पर है । जीवानन्द लोगों को चित्त-आकर्षण करने में बहुत पटु है ।... अब मैं जाऊँगा । तुम लोगों के प्रति मेरा एक उपदेश बाकी है । बहुत मन लगाकर उसे सुनो !”

दोनों ही शिष्यों ने करबद्ध हो निवेदन किया-“ आज्ञा दीजिये ।”

सत्यानन्द ने कहा-“ तुम दोनों से यदि कोई अपराध हुआ हो, या आगे करो, तो मेरे वापस आ जाने के पहले प्रायश्चित्त न करना । मेरे आ जाने पर अवश्य ही प्रायश्चित्त करना होगा ।”

यह कहकर सत्यानन्द स्वामी अपने स्थान पर चले गये । भवानन्द और जीवानन्द ने एक-दूसरे का मुँह ताका ।

भवानन्द ने पूछा-“ तुम्हारे ऊपर इशारा है क्या ?”

जीवानन्द-“ जान तो पड़ता है ! बहन के घर में कन्या को पहुंचाने गया था ।”

भवानन्द-“ इसमें क्या दोष है ? यह तो निषिद्ध नहीं है ! ब्राह्मणी के साथ मुलाकात तो नहीं की है ?”

जीवानन्द-“ जान पड़ता है, गुरुदेव ऐसा ही समझते हैं ?”

(4)

सायंकृत्य समाप्त करने के उपरान्त सत्यानन्द स्वामी ने महेन्द्र को बुलाकर कहा-“ तुम्हारी कन्या जीवित है ।”

महेन्द्र-“ कहां है महाराज ?”

सत्यानन्द-“ तु मुझे महाराज क्यों कहते हो ?”

महेन्द्र-“ सब यह कहते हैं, इसलिए । मठ के अधिकारियों को भी राजा शब्द से सम्बोधित किया जाता है । मेरी कन्या कहां है, महाराज ?”

सत्यानन्द-“ इसे सुनने के पहले एक बात का ठीक उत्तर दो- तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करोगे ?”

महेन्द्र-“ इसे मैंने मन-ही-मन निश्चित कर लिया है ।”

सत्यानन्द-“ तब कन्या कहां है, सुनने की इच्छा न करो !”

महेन्द्र-“ क्यों महाराज ?”

सत्यानन्द-“ जो यह व्रत ग्रहण करता है, उसे अपनी पी, पुत्र, कन्या, स्वजनो से किसी से भी सम्बन्ध नहीं रखना पड़ता-स्त्री, पुत्र, कन्या का मुँह देखने से भी प्रायश्चित्त करना होता है । जब तक संतानों की मनोकामना सिद्ध न हो, तब तक तुम कन्या का मुँह देख न सकोगे । अतएव यदि सन्तान-धर्म ग्रहण करना निश्चित हो, तो कन्या का पता पूछकर क्या करोगे ? देख तो पाओगे नहीं ।...”

महेन्द्र-“ यह कठिन नियम क्यों, प्रभु ?”

सत्यानन्द-“ संतानों का काम बहुत ही कठिन है । जो सर्वत्यागी है, उसके अतिरिक्त यह काम और किसी के

लिए उपयुक्त नहीं है। मायारज्जु से जिस का चित्त बंधा रहता है, खूंटे में बंधी घोड़ी की तरह वह कभी स्वर्ग में पहुंच नहीं सकता।”

महेन्द्र- “महाराज! बात मैंने ठीक-ठीक समझी नहीं। जो स्त्री-पुत्र का मुंह देखता है, वह क्या किसी गुरुतर कार्य का अधिकारी नहीं हो सकता?”

सत्यानन्द- “पुत्र-कलत्र का मुंह देखने से हम देव कार्य भूल जाते हैं। सन्तान-धर्म का नियम काम और किसी के लिए उपयुक्त नहीं है।”

महेन्द्र- “तो क्या न देखने से ही कन्या को भूल जाऊंगा?”

सत्यानन्द- “यदि न भूल सको तो यह व्रत ग्रहण न करो!”

सत्यानन्द- “सन्तान दो तरह के हैं-दीक्षित और अदीक्षित। जो अदीक्षित है, वे या तो संसारी हैं अथवा भिखारी। वे लोग केवल युद्ध के समय आकर उपस्थित हो जाते हैं; लूट का हिस्सा या पुरस्कार पाकर फिर चले जाते हैं। जो दीक्षित होते हैं, वे सर्वस्वत्यागी हैं। यही लोग सम्प्रदाय के कर्ता हैं। तुम्हें मैं अदीक्षित सन्तान होने का अनुरोध न करूंगा। युद्ध के समय लाठी-लकड़ीवाले अनेक लोग हैं। बिना दीक्षित हुए सम्प्रदाय के किसी गुरुतर कार्य के अधिकारी तुम हो नहीं सकते।”

महेन्द्र- “दीक्षा क्या है? दीक्षित क्यों होना होगा? मैं तो अब से पहले ही मन्त्र ग्रहण कर चुका हूँ।”

सत्यानन्द- “उस मंत्र का त्याग करना होगा।”

महेन्द्र- “मन्त्र का त्याग करूंगा कैसे?”

सत्यानन्द- “मैं वह पद्धति बता देता हूँ।”

महेन्द्र- “नया मन्त्र क्यों लेना होगा?”

सत्यानन्द- “सन्तागण वैष्णव है।”

महेन्द्र- “यह मैं समझ नहीं पाता हूँ कि सन्तान वैष्णव कैसे है। वैष्णवों का तो अहिंसा ही परमधर्म होता है।”

सत्यानन्द- “वह चैतन्य देव का वैष्णव-धर्म है। नास्तिक बौद्ध धर्म के अनुकरण से जो वैष्णवता उत्पन्न हुई थी, उसी का लक्षण है। प्रकृत वैष्णव-धर्म का लक्षण दुष्टों का दमन और धरित्री का उद्धार है। कारण, भगवान विष्णु ही संसार के पालक हैं। उन्होने दस बार शरीर धारणकर पृथ्वी का उद्धार किया था। केशी, हिरण्यकशिपु, मधु-कैटभ, पुर, नरक आदि दैत्यों का, रावणादि राक्षसों का तथा शिशुपाल आदि का संहार उन्होने किया है। वही जेता, जयदाता, पृथ्वी के उद्धारकर्ता और सन्तानों के इष्ट देवता हैं। चैतन्यदेव का वैष्णव धर्म वास्तविक वैष्णव-धर्म नहीं है-वह धर्म अधूरा है। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय हैं-लेकिन भगवान केवल प्रेममय ही नहीं हैं, वे अनंत शक्तिमय भी हैं। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय ही नहीं हैं, वे अनंत शक्तिमय भी हैं। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय हैं, सन्तानों के विष्णु केवल शक्तिमय हैं। हम दोनों ही वैष्णव हैं-लेकिन दोनों ही अधूरे हैं। बात समझ गये?”

महेन्द्र- “नहीं! यह तो कैसी नयी-नयी-सी बातें हैं। कासिमबाजार में एक पादरी के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। उसने भी कुछ ऐसी ही बातें कही थीं। अर्थात् ईश्वर प्रेममय है-तुम लोग यीशु से प्रेम करो-यह भी ऐसी ही बातें हैं।”

सत्यानन्द- “जिस तरह की बातों से हमारे चौदह पुरखे समझते आते हैं-उसी तरह की बातों से हम तुम्हें समझा रहे हैं। ईश्वर त्रिगुणात्मक है-यह सुना है?”

महेन्द्र- “हा, सत्व, रजस, तमस-यही तीन गुण हैं।”

सत्यानंद- “ठीक । इन तीनों गुणों की पृथक-पृथक उपासना होती है । उनके सत्व से दया-दक्षिणा आदि की उत्पत्ति होती है । वे अपनी उपासना भक्ति द्वारा करते हैं - चैतन्य सम्प्रदाय यही करता है । रजोगुण से उनकी शक्ति की उत्पत्ति होती है; इसकी उपासना युद्ध द्वारा, देवद्वेषीगण के निधन द्वारा होती है-वही हम करते हैं । और तमोगुण से ही भगवान भगवान अपनी साकार चतुर्भुज आदि विविध मूर्ति धारण करते हैं । केसर-चन्दनादि उपहार द्वारा उस गुण की पूजा होती है-सर्व साधारण वही करते हैं . अब समझे ?”

महेन्द्र- “समझ गया-संतानगण उपासक सम्प्रदाय मात्र है ।”

सत्यानंद- “ठीक है ! हम लोग राज्य नहीं चाहते-केवल मुसलमान भगवान के विद्वेषी हैं - इसलिए समूल विनाश करना चाहते हैं ।”

सत्यानन्द बातचीत समाप्त कर महेन्द्र के साथ उठकर उस मठस्थित देवालय में जहाँ विराट आकार की भगवान विष्णु की मूर्ति विराजित थी, वही पहुंचे । उस समय वहाँ अपूर्व शोभा थी- रजत,स्वर्ण और रत्नरंजित प्रदीपों से मंदिर आलोकित हो रहा था; राशि-राशि पुष्पों की शोभा से मंदिर और देव मूर्ति शोभित थी; सुगन्धित मधुर धूमराशि से कक्ष वस्तुतः देवसान्निध्य का प्रमाण उपस्थित कर रहा था । मंदिर में एक और पुरुष बैठा हुआ- “हरे मुरारे” स्तोत्र का पाठ कर रहा था । सत्यानंद के वहाँ पहुंचते ही उसने उठकर उन्हें प्रणाम किया । ब्रह्मचारी ने पूछा- “तुम दीक्षित होगे ?”

उसने कहा- “मुझ पर कृपा कीजिये !”

सत्यानन्द- “तुम लोग इन भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो कि संतान-धर्म के सारे नियमों का पालन करोगे !”

दोनों - “करूंगा ।”

सत्यानन्द- “जितने दिनों तक माता का उद्धार न हो, उतने दिनों तक गृहधर्म का परित्याग किये रहोगे ?”

दोनों - “करूंगा ।”

सत्यानन्द- “माता-पिता का त्याग करोगे ?”

दोनों - “करूंगा ।”

सत्यानन्द- “भ्राता-भगिनी ?”

दोनों - “त्याग करूंगा ।”

सत्यानंद- “दारा-सुत ?”

दोनों - “त्याग करूंगा ।”

सत्यानंद- “आत्मीय-स्वजन ? दास-दासी ?”

दोनों - “इन सबका त्याग किया ।”

सत्यानंद- “धन-सम्पदा-भोग ?”

दोनों - “सबका परित्याग ।”

सत्यानन्द- “इन्द्रियजयी होगे ? नारियों के साथ कभी एक आसन पर न बैठोगे ?”

दोनों - “न बैठेंगे; इन्द्रियां वश में रखेंगे ।”

सत्यानन्द- “भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो-अपने लिए या अपने स्वजनो के लिए अर्थोपार्जन नहीं करोगे ! जो कुछ उपार्जन करोगे, उसे वैष्णव धनागार को अर्पित कर दोगे !”

दोनों - “देगे ।”

सत्यानन्द- “सनातन-धर्म के लिए स्वयं अस्त्र पकड़कर युद्ध करोगे ?”

दोनो- “करेगे !”

सत्यानन्द- “रण में कभी पीठ न दिखओग?”

दोनो- “नही !”

सत्यानन्द- “यह प्रतिज्ञा भंग हो तो?”

दोनो- “जलती चिता में प्रवेश कर अथवा विषपान कर प्राण त्याग देंगे !”

सत्यानन्द- “और एक बात है, और वह है जाति। तुम किस जाति के हो? महेन्द्र तो कायस्थ है। तुम्हारी जाति?”

दूसरे व्यक्ति ने कहा- “मैं ब्राह्मण-कुमार हूँ !”

सत्यानन्द- “ठीक। तुम लोग अपनी जाति का त्याग कर सकोगे? समस्त सन्तान एक जाति में है। इस महाव्रत में ब्राह्मण-शूद्र का विचार नहीं है। तुम लोगो का क्या मत है?”

दोनो- “हम लोग भी जाति का ख्याल न करेंगे। हम सब माता की सन्तान एक जाति के हैं !”

सत्यानन्द- “अब मैं तुम लोगो को दीक्षित करूंगा। तुम लोगो ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे भंग न करना। भगवान मुरारि स्वयं इसके साक्षी हैं। जो रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, जरासन्ध, शिशुपाल आदि के विनाश-हेतु हैं, जो सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वजयी हैं, सर्व शक्तिमान हैं और सर्वनियन्ता हैं, जो इन्द्र के वज्र को भी बिल्ली के नाखूनो के समान समझते हैं, वही प्रतिज्ञा-भंगकारी को विनष्ट कर अनन्त नरकवास देंगे !”

दोनो- “तथास्तु !”

सत्यानन्द- “अब तुम लोग गाओ- “वन्देमातरम-”

दोनो ने मिलकर एक एकांत मन्दिर में भक्ति-भावपूर्वक मातृगीत का गान किया। इसके बाद ब्रह्मचारी ने उन्हें यथाविधि दीक्षित किया।

दीक्षा समाप्त होने के बाद सत्यानन्दजी महेन्द्र को एक बहुत ही एकांत स्थान में ले गये। दोनो के वहाँ बैठने के बाद सत्यानन्द ने कहना आरम्भ किया-“वत्स! तुमने तो यह महाव्रत ग्रहण किया है, उससे मुझे जान पड़ता है कि भगवान सन्तानो पर सदय हैं। तुम्हारे द्वारा माता का महत कार्य सिद्ध होगा। तुम ध्यानपूर्वक मेरी बातें सुनो! तुम्हें जीवनानन्द, भगवान के साथ वन-वन घूमकर युद्ध करना नहीं पड़ेगा। तुम पदचिन्ह में वापस लौट जाओ। अपने घर में रहकर ही तुम्हें सन्तान-धर्म का पालन करना होगा।”

यह सुनकर महेन्द्र विस्मित और उदास हुए, लेकिन कुछ बोले नहीं। ब्रह्मचारी कहने लगे- “इस समय हम लोगो के पास आश्रय नहीं है, ऐसा स्थान नहीं है कि यदि प्रबल सेना आकर घेरकर आक्रमण करे तो हम लोग खाद्यादि के साथ फाटक बन्द कर कुछ दिनों तक युद्ध कर सकें। हम लोगो के पास गढ़ नहीं है। वहाँ अट्टालिका भी तुम्हारी हैं, गांव भी तुम्हारे अधिकार में हैं-मेरी इच्छा है कि अब वहाँ एक गढ़ तैयार हो। परिखा प्राचीर द्वारा पदचिन्ह को घेर देने से-उसमें खाई, खन्दक आदि युद्धोपयोगी किले-बन्दी कर देने से और जगह-जगह तोपे लगा देने से बहुत ही उत्तम गढ़ तैयार हो सकता है। तुम घर जाकर रहो, क्रमशः दो हजार संतान वहाँ जाकर उपस्थिति होंगे। उन लोगो के द्वारा खाई-खन्दक प्राचीर आदि तैयार कराते रहो। वहाँ तुम्हें एक लौह-कक्ष बनवाना होगा; वही संतानो का अर्थ-भण्डार होगा। मैं एक-एक कर सोने से भरे हुए सन्दूक तुम्हारे पास भेजवाऊंगा। तुम उसी धनराशि से यह सब तैयार कराओ। मैं परदेश जाता हूँ। वहाँ से उत्तम कारीगर भेजूंगा। उनके आ जाने पर तुम पदचिन्ह में कारखाना स्थापित करो। वहाँ तोपें, गोले, बारूद, बन्दूक आदि निर्माण कराओ। इसीलिए मैं तुम्हें घर जाने को कहता हूँ।....”

महेन्द्र ने स्वीकार कर लिया।

पैर छूकर महेन्द्र के विदा होने पर, उनके संग उसी दिन जो दूसरा शिष्य दीक्षित हुआ था, उसने आकर सत्यानन्द को प्रणाम किया। सत्यानन्द ने उसे आशीर्वाद देकर बैठाया। इधर-उधर की मीठी बातें होने के बाद स्वामीजी ने कहा- “क्योंजी, भगवान कृष्ण में तुम्हारी प्रगाढ़ भक्ति है या नहीं !”

शिष्य ने कहा- “कैसे बताऊं? मैं जिसे भक्ति समझता हूँ, शायद वह भंडैती या आत्मप्रतारणा हो !”

सत्यानन्द ने सन्तुष्ट होकर कहा- “ठीक है, जिससे दिन-प्रतिदिन भक्ति का विकास हो, ऐसी ही कोशिश करना। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारी साधना सफल हो ! कारण तुम अभी उम्र में बहुत युवा हो। वत्स ! क्या कहकर बुलाऊं- अब तक मैंने पूछा नहीं !”

नवसन्तान ने कहा- “आपकी जो अभिरुचि हो ! मैं तो वैष्णवों का दासानुदास हूँ !”

सत्यानन्द- “तुम्हारी नई उम्र देखकर तुम्हें नवीनानन्द बुलाने की इच्छा होती है, अतः तुम अपना यही नाम रखो ! लेकिन एक बात पूछता हूँ, तुम्हारा पहले क्या नाम था? यदि बताने में कोई बाधा हो, तब भी बता देना। मुझसे कहने पर बात दूसरे कान में न पहुंचेगी। सन्तानधर्म का मर्म यही है कि जो अवाच्य भी हो, उसे भी गुरु से कह देना चाहिए। कहने में कोई हानि न होगी !”

शिष्य- “मेरा नाम शान्ति देव शर्मा है !”

सत्यानन्द- “तुम्हारा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है !”

यह कहकर सत्यानन्द ने शिष्य की डेढ़ हाथ लम्बी काली-काली दाढ़ी को बाँए हाथ से पकड़कर खींच लिया, नकली दाढ़ी अलग हो गयी। सत्यानन्द ने कहा- “छिः बेटा ! मेरी साथ ठगी? - और मुझे ही ठगना था तो इस उम्र में डेढ़ हाथ की दाढ़ी क्यों ? और दाढ़ी तो दाढ़ी, यह कण्ठ का स्वर- यह आंखों की कोमल दृष्टि छिपा सकती हो? मैं यदि ऐसा ही निर्बोध होता तो क्या इतने बड़े काम में कभी हाथ डालता?”

बेशर्म शान्ति कुछ देर तक अपनी आंखों को हाथ से ढाँके बैठी रही। इसके बाद ही उसने हाथ हटाकर वृद्ध पर मोहक तिरछी चितवन डालकर कहा- “प्रभु ! तो इसमें दोष ही क्या है? स्त्री के बाहुओं में क्या बल नहीं रहता?”

सत्यानन्द- “गोष्पद में जितना जल होता है !”

शान्ति- “सब सन्तानों के बाहुबल की परीक्षा कभी आपने की है?”

सत्यानन्द- “की है !”

यह कहकर सत्यानन्द एक इस्पात का धनुष और लोहे का थोड़ा तार ले आये। उसे शान्ति को देते हुए उन्होंने कहा- “इसी इस्पात के धनुष पर लोहे के तार की डोरी चढ़ानी होगी। प्रत्यंचा का परिणाम दो हाथ हैं। डोरी चढ़ाते-चढ़ाते धनुष सीधा हो जाता है और चढ़ानेवाले को दूर फेंक देता है। जो इसे चढ़ा सकता है, वही वास्तव में बलवान है !”

शान्ति ने धनुष और तार को अच्छी तरह देखकर पूछा- “सभी संतान क्या इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं !”

सत्यानन्द- “नहीं, इसके द्वारा केवल उन लोगों के बल की थाह ले ली है !”

शान्ति- “क्या कोई भी इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो नहीं सका?”

सत्यानन्द- “केवल चार व्यक्ति !”

शान्ति- “क्या मैं पूछ सकती हूँ कि वे कौन-कौन हैं ?”

सत्यानन्द- “हां, कोई निषेध नहीं है- एक तो मैं स्वयं हूँ !”

शान्ति- “और?”

सत्यानंद- “जीवानन्द, भवानंद और ज्ञानानन्द !” शांति ने धनुष और तार लिया; एक झटके में उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उसने धनुष सत्यानंद के पैरों पर फेक दिया।

सत्यानंद विस्मित और स्तंभित हुए खड़े रह गये। कुछ देर बाद बोले- “यह क्या! तुम देवी हो या दानवी !” शांति ने हाथ जोड़कर कहा- “मैं सामान्य मानवी हूँ, लेकिन ब्रह्मचारिणी हूँ !”

सत्यानंद- “इससे क्या हुआ! तुम क्या बाल विधवा हो? नहीं, लेकिन बाल-विधवा में भी इतना बल नहीं होता, वह तो एकाहारी होती है !”

शांति- “मैं सधवा हूँ !”

सत्यानंद- “तो क्या तुम्हारे स्वामी का पता नहीं है- निरूदिष्ट है?”

शांति- “नहीं, उनका पता है; उन्हीं के उद्देश्य से मैं यहां आयी हूँ !”

मेघ हटकर सहसा निकल आनेवाली धूप की तरह सत्यानंद की स्मृति जाग पड़ी है। उन्होंने कहा- “याद आ गया। जीवानंद की पत्नी का नाम शांति है। तुम क्या जीवानन्द की ब्राह्मणी हो? अब शांति शरमा गयी। उसने अपनी जटा से मुंह ढांक लिया मानो कितने ही हाथियों के झुण्ड पद्म पर घिर गये हो। सत्यानन्द ने पूछा - “क्यों तुम यह पापाचार करने आयी?”

सहसा शान्ति ने चेहरे पर से जटाएं हटाते हुए कहा- “इसमें पापाचरण क्या है, प्रभु? पत्नी यदि पति का अनुसरण करे, तो यह पापाचरण कैसे है। संतान धर्मशास्त्र में यदि इसे पापाचार कहते हैं तो सन्तान धर्म अधर्म है। मैं उनकी सहधर्मिणी हूँ। वे धर्माचरण में प्रवृत्त हैं, मैं भी उनके साथ धर्माचरण में सहयोग देने के लिए ही आयी हूँ।

शान्ति की तेजस्विनी वाणी सुनकर, उन्नत ग्रीव स्फीतवक्ष, कम्पित अधर तथा उज्वल फिर भी आंसू भरी आंखें देखकर सत्यानन्द बहुत प्रसन्न हुए; बोले- “तुम साध्वी हो; लेकिन देखो बेटा- पत्नी केवल गृहधर्म में ही सहधर्मिणी होती है- वीर-धर्म में रमणी क्या सहयोग करेगी?”

शान्ति- “कौन अपत्नीक होकर आज तक महावीर हो सका है? सीता के न रहते क्या रामवीर हो सकते? अर्जुन के कितने विवाह हुए थे, जरा गिनिये तो? भीम को जितना बल था, उतनी ही क्या उनकी पत्नियां नहीं थी? कितना गिनाऊँ? फिर क्या आपको बताने की जरूरत है?”

सत्यानन्द- “बात ठीक है, लेकिन रणक्षेत्र में कौन वीर अपनी पत्नी को संग लेते हैं?”

शान्ति- “अर्जुन ने जब दानवी सेना के साथ अन्तरिक्ष में युद्ध किया था, तो उनके रथ को कौन चला रहा था? द्रौपदी के संग न रहते क्या पाण्डव कभी कुरुक्षेत्र में जूझ सकते थे?”

सत्यानन्द- “वह हो सकता है, लेकिन सामान्य मनुष्यों का हृदय स्त्रियों में आसक्त रहता है और वही उन्हें कार्य से विरत करता है। इसीलिए सन्तानों का यह व्रत है कि वे कभी स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेंगे। जीवानन्द मेरा दाहिना हाथ है। क्या तुम मेरा दाहिना हाथ काट देने के लिए आयी हो?”

शान्ति- “मैं आपके हाथ में बल बढ़ाने के लिए आयी हूँ। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ, और प्रभु के समीप ब्रह्मचारिणी ही रहूंगी। मैं केवल धर्माचरण के लिए आयी हूँ, स्वामी-दर्शन के लिए नहीं- विरह यंत्रणा से मैं कातर नहीं हूँ। पतिदेव ने जो धर्म ग्रहण किया है, मैं उसकी भागिनी क्यों न बनूँ? इसीलिये आयी हूँ !”

सत्यानन्द- “अच्छ तो कुछ दिन तुम्हारी परीक्षा करके देखूंगा !”

शान्ति बोली- “क्या मैं आनन्द मठ में रह सकूंगी?”

सत्यानन्द- “आज और कहां जाओगी?”

शान्ति- “इसके बाद?”

सत्यानन्द- “मां भवानी की तरह तुम्हारे ललाट पर अग्नि तेज है, सन्तान सम्प्रदाय को क्या भस्म करोगी?”
इसके बाद आशीर्वाद देकर सत्यानन्द ने शांति को विदा किया।

शांति मन ही मन बोली-“रहो बूढ़े भगवान! मेरे कपाल मे आग है? मैं मुंहजली हूं कि तेरी दादी मुंहजली है?”

वस्तुतः सत्यानन्द का वह अभिप्राय नहीं था- आंखों के विद्युत प्रकाश से ही उनका मतलब था लेकिन यह बात क्या बुद्धों को युवतियों से कहनी चाहिये?

उस रात शांति को मठ में रहने की अनुमति मिली थी, इसीलिए वह कमरा खोजने लगी। अनेक कमरे खाली पड़े हुए थे। गोवर्द्धन नाम का एक परिचारक था- वह भी छोटी पदवी का सन्तान था- वह हाथ में प्रदीप लिये हुए शांति को कमरे दिखाने लगा। कोई कमरा शांति को पसन्द न आया। हताश होकर गोवर्द्धन शांति को सत्यानन्द के पास वापस ले जाने लगा। शांति बोली- भाई सन्तान! इधर की तरफ जो कई कमरे हैं, उन्हें तो नहीं देखा गया!”

गोवर्द्धन बोला- वह सब कमरे हैं तो अवश्य बहुत सुन्दर किन्तु उनमें सन्तान लोग हैं।”

शांति- उसमें कौन कौन हैं?”

गोवर्द्धन- बड़े बड़े सेनापति हैं।”

शांति- बड़े बड़े सेनापति वे सेनापति कौन हैं?”

गोवर्द्धन- भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द- आनन्द मठ आनन्दमय हैं।”

शांति- चलो न, जरा वे कमरे देख आएं।”

गोवर्द्धन पहले शांति को धीरानन्द के कमरे में ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोणपर्व पढ़ रहे थे- अभिमन्यु ने किस तरह सप्तमहारथियों के साथ युद्ध किया था, इसी में उनका चित्त निविष्ट था। वे कुछ न बोले। शांति बिना कुछ बोले-चाले आगे बढ़ गयी।

इसके बाद शांति ने भवानन्द के कमरे में प्रवेश किया। उस समय भवानन्द उर्ध्वदृष्टि किये किसी के चेहरे की याद में तल्लीन थे। किसका चेहरा, यह नहीं जानते, लेकिन चेहरा बड़ा सुन्दर है- कृष्ण-कुंचित सुगन्धित अलकराशि आकर्णप्रसारी भ्रूयुग के ऊपर पड़ी हुई है, मध्य में अनद्य त्रिकोण ललाट देश है, उस पर मृत्यु की कराल कालछाया ग्रहण की तरह जान पड़ती है- मानो वहां मृत्यु और मृत्युंजय में द्वन्द्व हो रहा हो! नयन मूंदे हुए, भौंहे स्थिर, ओठ नीले, गाल पीले, नाक शीतल, वक्ष उन्नत, वायु कपड़े को हिला रही है। इसके बाद ही जैसे शरतमेघ में विलुप्त चन्द्रमा क्रमशः मेघदल को अतिक्रम कर अपना सौंदर्य विकसित करता है; जैसे प्रभात का सूर्य तरंगाकृति मेघमाला को क्रमशः सुवर्णरंग से रंजित कर स्वयं प्रदीप्त होता है, दिग्मण्डल को आलोकित करता है, स्थल, जल, कीट-पतंग सबको प्रफुल्ल करता है- वैसे ही उस शांत देह में आनन्दमयी शोभा का संचार हो रहा था। आह! कैसी अनुपम शोभा थी! भवानन्द यही ध्यान कर रहे थे, अतः उन्होंने भी कोई बात न कही। कल्याणी के रूप से उनका हृदय कातर हो गया था, शांति के रूप की तरफ उन्होंने ध्यान ही न दिया।

इसके उपरांत शांति तीसरे कमरे में गई। उसने पूछा-“यह किसका कमरा है?”

गोवर्द्धन बोला-“जीवानंद स्वामी का।”

शांति-“यहां कौन है? कहां, इस कमरे में तो कोई नहीं है।”

गोवर्द्धन-“कही गए होंगे, अभी आ जाएंगे।”

शांति-“यह कमरा सब कमरो से उत्तम है।”

गोवर्द्धन-“भला यह कमरा ऐसा न होगा!”

शांति-“क्यो?”

गोवर्द्धन-“जीवानंद स्वामी इसमे रहते है न!”

शांति-“मै इसी मे रह जाती हूं, वह कोई दूसरा कमरा खोज लेगे।”

गोवर्द्धन-“भला ऐसा भी हो सकता है? जो इस कमरे मे रहते है, उन्हे चाहे मालिक समझिये, या जो चाहे समझिए- जो कहते है, वही होता है।”

शांति-“अच्छा तुम जाओ, मुझे यदि जगह न मिलेगी तो पेड़ के नीचे पड़ी रहूंगी।”

यह कहकर गोवर्द्धन को बिदा कर शांति उसी कमरे मे घुसी! कमरे मे घुसकर शांति जीवानंद का कृष्णाजिन बिछाकर और दीपक तेज कर उनकी रखी एक किताब पढ़ने लगा।

कुछ देर बाद जीवानंद उपस्थित हुए! शांति का यद्यपि पुरुष वेश था, फिर भी उन्होने आते ही पहचान लिया, बोले-“यह क्या? शांति?”

शांति न धीरे-धीरे पुस्तक रखकर जीवानंद के चेहरे की तरफ देखकर कहा-“महाशय! शांति कौन है?”

जीवानंद भैचक्रे से रह गए, अंत मे बोले-“शांति कौन है? क्यो, क्या तुम शांति नही हो?”

शांति उपेक्षा के साथ बोली-“शांति कौन है? क्यो, क्या तुम शांति नही हो?”

शांति उपेक्षा के साथ बोली-“मै नवीनानंद स्वामी हूं।”

यह कहकर वह फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

जीवानंद खखाकर हंस पड़े, बोले-“यह नया तमाशा बढ़िया है! अच्छा श्री श्री नवीनानंद जी! क्या सोचकर यहां पहुंच गए?”

शांति बोली-“यह नया तमाशा बढ़िया है! अच्छा भले आदमियो मे रिवाज है कि पहली मुलाकात मे ‘आर्ष’-‘श्रीमान’-‘महाशय’ आदि शब्दो से संबोधन करना चाहिए। मै भी आपसे असम्मान-जनक रूप मे बात नही करता हूं। तब आप मुझे ‘तुम-तुम’ क्यो कहते है?”

“जो आज्ञा”-कहकर गले मे कपड़ा डालकर हाथ जोड़कर जीवानंद ने कहा-“अब विनीत भाव से भृत्व का निवेदन है, कि किस कारण भैरवीपुर से इस दीन-भवन मे महाशय का शुभागमन हुआ है? आज्ञा किजिए!”

शांति ने अति गंभीर भाव से कहा-“व्यंग्य की कोई आवश्यकता नही है। मै भैरवीपुर को पहचानता ही नही। मै संतानधर्म ग्रहण करने के लिए आज आकर दीक्षित हुआ हूं।”

जीवानंद-“अरे सर्वनाश! क्या सचमुच?”

शांति-“सर्वनाश क्यो? आप भी तो दीक्षित है!”

जीवानंद-“तुम तो स्त्री हो!”

शांति-“यह कैसे? ऐसी बात आपने कैसे सुनी?”

जीवानंद-“मेरा विश्वास था कि मेरी ब्राह्मणी? स्त्री है।?”

शांति-“ब्रह्मणी? है या नही?”

जीवानंद-“थी तो जरूर!”

शांति-“आपको विश्वास है कि मै आपकी ब्राह्मणी हूं?”

जीवानंद ने फिर गले मे कपड़ा डालकर बड़े ही विनीत भाव से कहा-“अवश्य महाशयजी!”

शांति-“यदि ऐसी मजाक की बात आपके मन में है, तो सही, आपका कर्तव्य क्या है?”

जीवानंद-“आपके शरीर के कपड़ों को बलपूर्वक हटा देने के बाद अधर-सुधापान!”

शांति-“यह आपकी दृष्ट-बुद्धि है, या मेरे प्रति असाधारण भक्तिका परिचय मात्र है! आपने दीक्षा के अवसर पर शपथ ली है कि स्त्री के साथ एकासन पर कभी न बैठूंगा। यदि आपका यह विश्वास हो कि मैं स्त्री हूँ-ऐसा सर्प-रज्जु भ्रम अनेक को होता है- तो आपके लिए उचित यही है कि अलग आसन पर बैठे। मुझसे तो आपको बात भी नहीं करनी चाहिए!”

यह कहकर शांति ने फिर पुस्तक पाठ में मन लगाया। अंत में परास्त होकर जीवानंद पृथक शय्या-रचना कर लेट गए।

भगवान की अनुकंपा से 76 वे बंगाब्द का अकाल समाप्त हो गया। बंगाल प्रदेश के छः आना मनुष्यों को-नहीं कह सकते, कितने कोटि-यमपुरी को भेजकर वह दुर्वत्सर स्वयं काल के गाल में समा गया। 77वें वर्ष में ईश्वर प्रसन्न हुए। सुवृष्टि हुई, पृथ्वी शस्यश्यामला हुई; जो लोग बचे थे, उन्होंने पेट भरकर भोजन किया। अनेक अनाहार या अल्पाहार से बीमार पड़ गए थे, पूरा आहार सह नहीं सके। बहुतेरे इसी में मरे। पृथ्वी तो शस्यश्यामलिन हुई, लेकिन जनशून्या हो गयी। बंगाल प्रदेश जंगलो से भर गया। जहां हंसती हुई हरियाली भूमि थी, जहां असंख्या गो-महिषों की चरने की भूमि थी, जो गांव की भूमि युवक-युवतियों की प्रमोद-भूमि थी-वह सब महारण्य में परिणत होने लगी। इसी तरह एक वर्ष गया, दो वर्ष गए, तीन वर्ष गए। जंगल बढ़ते ही जाते थे। जो मनुष्यों के सुख के स्थान थे, वहां हिंसक शेर आदि पशु आकर हरिणों पर धावा बोलने लगे। दल बांधकर जहां सुंदरियां आलता-रंजित चरणों से पायजेब आदि पशु आकर हरिणों पर धावा बोलने लगे। दल बांधकर जहां सुंदरियां आलता-रंजित चरणों से पायजेब आदि की झनकार करती हुई, वृद्धाओं के साथ व्यंग करती हुई, हंसती हुई गुजरा करती थी, वही अब भालुओं ने अपने बच्चों को लालन-पालन शुरू किया है। जहां छोटी उम्र के बालक सांयकाल के समय जुटकर, फूले हुए पुष्प जैसा हृदय लेकर मनमोहक हंसी से स्थान गुंजया करते थे, अब वहां श्रृंगालों के विवर हैं। नाट्यमंदिरों में दिन के समय सर्पराजों की भयंकर फुफकार सुनाई पड़ती है। अब बंगाल में अन्न होता है; लेकिन कोई खाने वाला नहीं है। बिक्री के लिए पैदा करते हैं, लेकिन कोई खरीददार नहीं है। कृषक अनाज पैदा करते हैं, पर पैसे नहीं मिलते। जमींदार को वे लगान दे नहीं सकते। राजा के जमींदारी छीन लेने पर जमींदार सर्वहत्त होकर दरिद्र हो गए। वसुमती के बहु-प्रसविनी होने पर भी जनता कंगाल हो गयी। चोर-डाकुओं ने माथा उठाया और साधु पुरुषों ने घर में मुंह छिपाया।

इधर संतान-संप्रदाय नित्य चंदन-तुलसी से विष्णु-पादपद्मों की पूजा करने लगा। जिनके घर में पिस्तौल-बंदूकें थी, संतानगण उससे वह छीन लाए। भवानंद ने सहयोगियों से कह दिया था-“भाई! यदि किसी घर में मणि-माणिक्य गंजा हो और एक टूटी हुई बंदूक भी हो, तो बंदूक ले आना, धन-रत्न छोड़ देना।”

इसके बाद ये लोग गांव-गांव में अपने गुप्तचर भेजने लगे। पर लोग जहां हिंदू होते थे, कहते थे “भाई! विष्णु-पूजा करोगे!” इसी तरह बीस-पचीस संतान किसी मुसलमान बसती में पहुंच जाते और उनके घर में आग लगा देते थे; उनका सर्वस्व लूटकर हिंदू विष्णु-पूजा में उसे वितरित कर देते थे। लूट का भाग पाने पर लोगो के प्रसन्न होने पर उन्हें संतानगण मंदिर में लाकर विष्णुचरणों पर शपथ खिलाकर संतान बना लेते थे। लोगो ने देखा कि संतान होने में बड़ा लाभ है। विशेषतः मुसलमानों राजत्वकाल में उनकी अराजकता और कुशासन से लोग ऊब उठे थे। हिंदू धर्म की विलोपावस्था के समय अनेक हिंदू अपने देश में हिंदुत्व-स्थापन के लिए व्यग्र हो रहे थे। अतः दिन-प्रतिदिन संतानों की संख्या बढ़ने लगी। प्रतिदिन सौ-सौ, मास में हजार-हजार की संख्या में ग्रामीण लोग संतान बनाकर उनकी संख्या वृद्धि कर मुसलमानों को शासन से विरत करने

लगे। जीवानंद और भवानंद के पदपद्मों में प्रणाम कर संतानों की संख्या अनंत होने लगी। जहां वे लोग राजपुरुषों को पाते थे, अच्छी तरह मरम्मत करते थे, मुसलमानों के गांव भस्म कर रख बनाए जाने लगे। स्थानीय मुसलमान नवाब यह सुनकर दल-के-दल सैनिकों को इनके दमन के लिए भेजते थे; लेकिन उस समय तक संतान गण दलबद्ध, शस्त्रयुक्त और महादंभशाली हो गए थे। उनके तेज के आगे मुसलिम फौज अग्रसर हो न पाती थी; यदि आगे बढ़ती थी तो अमित संख्या में संतान-सैन्य उस पर आक्रमण कर उनको धुनकी हुई रई की तरह उड़ा देती थी। कभी कोई दल यदि परास्त होता या, तो तुरंत दूसरा बड़ा दल आकर उस मुस्लिम फौज का सर उड़ा देता था और मत होकर हरिनाम का जयघोष करता, नाचता गायब हो जाता था। उस समय लब्धप्रतिष्ठ अंगरेज कुल के प्रातः सूर्य वारेन हेस्टिंग्स भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल थे। कलकत्ते में बैठे हुए वे राजनीतिक शृंखला की कड़ियां गिन रहे थे कि इसी से वे समूचे भारत को बांध लेंगे। एक दिन भगवान ने भी सिंहासन पर बैठकर निःसंदेह कहा था- तथास्तु! लेकिन वह दिन अभी दूर था। आजकल तो संतानों की दिगंत-व्यापिनी हरिध्वनि से वारेन हेस्टिंग्स भी कांप उठे थे।

हेस्टिंग्स साहब ने पहले तो देशी फौज से विद्रोह दबाने की चेष्टा की थी। लेकिन उन देशी सिपाहियों की यह दशा हुई कि वे लोग एक बुढ़ी औरत के मुंह से भी यदि हरिनाम सुन पाते थे, तो भागते थे, अंत में निरूपाया होकर वारेन हेस्टिंग्स ने कप्तान टॉमस नामक एक सुदक्ष सेनापति के अधिनायकत्व में थोड़ी गोरी फौज भेजकर विद्रोह-दमन का यत्न किया।

कप्तान टॉमस विद्रोह-निवारण के लिए बहुत ही उत्तम उपाय करने लगे। उन्होंने अपनी गोरी पल्टन के साथ नवाब की सेना और जमींदारों के आदमी मिलाकर एक अत्यंत बलिष्ठ सेना तैयार कर ली। इसके बाद उस सम्मिलित सैन्य के टुकड़े-टुकड़े कर उपयुक्त नायकों के हाथ में उन्होंने सौंप दिया। साथ ही उन लोगों को छोटे-छोटे निश्चित अंचलों में विभक्त कर दिया; कह दिया कि जहां संतानों को पाओ, पशु की तरह मारो और हंकाओ। गोरी सैन्य दम्भ की बोटल छान संगीन चढ़ाकर हुई। लेकिन टॉमस की सेना, जैसे खेती काटी जाती है, वैसे ही काटी जाने लगी। हरिध्वनि से टॉमस के कान बहरे हो गए; क्योंकि उस समय संतान असंख्य थे और प्रदेश भर में फैले हुए थे।

कम्पनी की उस समय अनेक कोठियां थीं। ऐसी ही एक कोठी शिवग्राम में थी। डॉनीवर्थ साहब इस कोठी के अध्यक्ष थे। उस समय रेशम-कोठी की रक्षा का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध हुआ करता था।

डॉनीवर्थ ने इसी वजह से किसी तरह अपनी प्राणरक्षा की। लेकिन अपनी स्त्री-कन्या को कलकत्ता भेज देने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा था; कारण-डॉनीवर्थ सन्तानों द्वारा बहुत ही पीड़ित हुए थे। उसी समय टॉमस साहब थोड़ी फौज लेकर उस अंचल में पहुंच गये। उस समय कितने ही डोम, चमार, लंगड़े-लूले भी पराया धन लूटने के लिए उत्साहित हो गये थे। उन सबों ने जाकर कप्तान टॉमस की रसद पर आक्रमण किया। कप्तान साहब बहुत अधिक मात्रा में खाद्य-सामग्री- घी, मैदा, सूजी, चावल गाड़ियों पर लदवाकर ले आ रहे थे। इसे देखकर डोम-चमारों का दल अपना लोभ संवरण कर न सका- उन सबने जाकर गाड़ी पर आक्रमण किया; लेकिन सिपाहियों की दो-चार संगीने खाकर सब भागे।

कप्तान टॉमस ने उसी समय कलकत्ते रिपोर्ट भेजी कि आज कुल 1५7 (एक सौ संतावन) सिपाहियों को लेकर मैंने 14730 विद्रोहियों को परास्त किया है। विद्रोहियों के 21५3 (इक्कीस सौ तिरपन) व्यक्ति मरे, 1223 घायल हुए और 7 व्यक्ति बन्दी हुए। केवल अन्तिम संख्या सत्य थी। कप्तान टॉमस ने द्वितीय ब्लेनहम या रसवाक का युद्ध जीता- यह सोचते हुए वे अपनी मूर्खों पर ताव देते हुए इधर-उधर ठाट से घूमने लगे। उन्होंने डॉनीवर्थ से कहा- “अब क्या डरते हो? बस, विद्रोहियों का दमन हो गया! अब अपनी स्त्री-कन्या का कलकत्ते से बुला

लो।”

इस पर डॉनीवर्थ ने उत्तर दिया- “ऐसा ही होगा! आप दस दिन यहां ठहरिये, देश को जरा और शांत होने दीजिये, फिर बुला लेंगे।”

डॉनीवर्थ के पास पल्टन की मुर्गियाँ पली हुई थी और उनके यहां का पानी भी बहुत अच्छा था। विभिन्न वन्यपक्षी उनके टेबुल की शोभा बढ़ाते थे। दाढ़ीवाला बावर्ची मानो द्वितीय द्रौपदी था। अतः बिना कुछ बोले-चाले कप्तान टॉमस वही डटे रहने लगे।

इधर भवानंद मन ही मन व्यस्त है कि कब इस कप्तान का सर काटकर द्वितीय शम्बरारि की उपाधि धारण करूं। अंग्रेज इस समय भारतोद्धार के लिए(?) आये हैं, ये संतानगण तब तक समझ न सके थे। कैसे समझते? कप्तान टॉमस के सम-सामयिक भी उस समय यह न समझ सके थे कि भारतवर्ष पर हमारा राज्य स्थापित हो सकेगा। उस समय भविष्य तो विधाता ही जानते थे! भवानंद मन में सोचते थे कि इस असुर-वंश का एक दिन में निपात करूंगा; सब एकचित हो जाएं और जरा असतर्क सन्तान लोग अलग रहे। यही विचारक सब अलग रहे। उधर कप्तान टॉमस द्रौपदी गुण-ग्रहण में संलग्न थे।

साहब बहादुर शिकार के बड़े शौकीन थे। वे कभी-कभी शिवग्राम के निकट के जंगल में शिकार खेलने निकल जाते थे। एक दिन डॉनीवर्थ के साथ अनेक शिकारियों को लेकर टॉमस शिकार के लिए निकल पड़े। कहना ही क्या है! टॉमस बड़े ही साहसी व्यक्ति हैं, बल-वीर्य में अंगरेजों में अतुलनीय हैं। इस जंगल में शेर, भालू आदि हिंसक जन्तुओं का बाहुल्य है। बहुत दूर निकल जाने पर साथ के शिकारियों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया कि निविड़ जंगल में हम न घुसेंगे; वे बोले- “अब भीतर राह नहीं है, आगे जा न सकेंगे।” डॉनीवर्थ भी ऐसे भयानक शेर के सामने पड़ चुके थे कि वे भी घुसने से मुकर गये। सब लोग लौटना चाहते थे। कप्तान टॉमस ने कहा- “तुम लोग लौट जाओ, मैं न लौटूंगा।” यह कहकर कप्तान साहब ने भयानक जंगल में प्रवेश किया। वस्तुतः उस जंगल में राह न थी। घोड़ा आगे बढ़ न सकता था; लेकिन साहब ने अपना घोड़ा भी छोड़ दिया और कन्धे पर बन्दूक रखकर पांव पैदल आगे बढ़े। घने जंगल में प्रवेश कर इधर उधर शेर की खोज करने लगे; पर शेर कहीं न था। फिर देखा क्या- एक बड़े पेड़ के नीचे, खिले पुष्पो की लता अपने शरीर से लपेटे हुए कौन बैठा हुआ था? एक नवीन संन्यासी बैठा अपने रूप से जंगल में उजाला किये हुए है। प्रस्फुटित पुष्प मानो उस शरीर का सानिध्य पाकर कुछ अधिक सुगन्धित हो गये हैं। कप्तान टॉमस को पहले तो विस्मय हुआ, फिर क्रोध आया। कप्तान साहब थोड़ी बहुत हिन्दी बोल लेते थे, बोले- “तुम कौन?”

संन्यासी ने कहा- “मैं संन्यासी हूँ।”

कप्तान ने कहा - “तुम रिबेल है?”

संन्यासी- “वह क्या?”

कप्तान- “हम तुमको गुली करके माड़ेगा।”

संन्यासी- “मारो।”

कप्तान जरा मन में आगा-पीछा कर रहे थे कि गोली मारे या न मारे; इसी समय विद्युत वेग से संन्यासी ने आक्रमण कर उनकी बन्दूक छीन ली। संन्यासी ने अपना वक्षावरण चर्म खोलकर फेंक दिया। एक झटके में जटा अलग हो गयी। कप्तान टॉमस ने देखा कि उसके सामने अपूर्व स्त्री-मूर्ति है। सुन्दरी ने हंसते-हंसते कहा- “साहब! हम लोग नारी हैं, किसी को चोट नहीं पहुंचाती। मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ कि जब हिन्दू-मुसलमानों में लड़ाई हो रही है, तो इस बीच में तुम लोग क्यों बोलते हो? अपने घर लौट जाओ!”

साहब- “कौन हो तुम?”

शान्ति-“देखते तो हो, संन्यासिनी हूँ-जिन लोगो से लड़ने आये हो, मैं उन्ही मे से एक स्त्री हूँ।”

साहब-“टुम हमाड़ा घड़ मे रहेगा?”

शान्ति-“क्या तुम्हारी उपपत्नी बनकर?”

साहब-“इसी माफक रहने सकता; शादी नहीं करेगा।”

शान्ति-“मुझे भी एक बात पूछनी है, हमारे घर मे एक सुन्दर बन्दर था, वह हाल मे ही मर गया है- उसकी जगह खाली पड़ी है। कमरे मे सिकड़ी डाल दूंगी। तुम उस दरबे मे रहोगे? हमारे बगीचे मे खूब केला होता है।”

साहब-“तुम बड़ी स्प्रिटेड वूमेन है। टुमारी करेज पर हाम खुशी है। टुम हमाड़ा घड़ मे चलो। टुमाड़ा आदमी लड़ाई मे मड़ेगा, टब टुम क्या कड़ेगा?”

शान्ति-“तब हमारी एक शर्त हो जाए। युद्ध तो दो-चार दिन मे होगा ही। अगर तुम जीतोगे, तो मैं तुम्हारी उपपत्नी होकर रहूंगी। अगर हम लोग जीतेगे, तो तुम हमारे घर मे उसी दरबे मे बन्दर बनकर रहना और केला खाना।”

साहब-“केला बहुत अच्छ चीज। अभी तुम्हारे पास है?”

शान्ति-“ले अपनी बन्दूक ले! ऐसे बेवकूफो के साथ कौन बात करे!”

यह कहकर शान्ति बन्दूक फेककर हंसती हुई भाग गयी।

साहब के पास से भागकर शान्ति जंगल मे गायब हो गयी। थोड़ी ही देर बाद साहब ने मधुर स्त्री-कण्ठ से गाना सुना-

“ए यौवन-जल तरंग रोघिबे के

हरे मुरारे! हरे मुरारे!”

इसके साथ ही सारंगी पर वही मधुर झनकार उठी- “ए यौवन-जल तरंग रोघिबे के?

हरे मुरारे! हरे मुरारे!”

इसके साथ ही पुरुष कण्ठ के साथ फिर गाना हुआ- “ए यौवन-जल तरंग रोघिबे को?

हरे मुरारे! हरे मुरारे!”

तीन स्वरो की मिलित झनकार ने जंगल की समूची लताओ को कंपा दिया। शान्ति गाती हुई गीत के पूरे चरण गाने लगी-

“ए यौवन जल- तरंग रोघिबे के?

“हरे मुरारे! हरे मुरारे!”

“ए यौवन जल- तरंग रोघिबे के?

“हरे मुरारे! हरे मुरारे!

जलते तूफान होये छे

आमार नूतन तरी मसिलो सुखे,

माझीते हाल धरे छे,

हरे मुरारे! हरे मुरारे!

मेगे बालिरे बांध, पुराई मनेर साध,

जोरदार गांगे जल छूटे छे, राखिबे के?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे !“

सारंगी भी बज रही थी-“

जोरदार गांगेजल छूटे छे, रखिबे के ?

हरे मुरारे ! हरे मुरारे ।

जहां बहुत ही घना जंगल है- भीतर क्या है, बाहर से यह दिखाई नहीं देता, शांति उसी के अंदर प्रवेश कर गयी थी। वही उन्ही शाखा- पल्लवो मे छिपी हुई एक छोटी कुटी है। डालियो के ही बन्धन और पत्तो का छाजन है। काठ की जमीन, उस पर मिट्टी पटी हुई है। लताद्वार खोलकर उसी के अंदर शांति प्रवेश कर गयी। वहां जीवानंद बैठे सारंगी बजा रहे थे।

जीवानंद ने शांति को देखकर पूछा- “इतने दिनों के बाद गंगा मे ज्वार का जल बढ़ा है क्या?”

शांति ने हंसते हुए उत्तर दिया- “ज्वार का बढ़ा हुआ गंगा जल ही क्या तालो को डुबाता है?”

जीवानंद ने दुःखी होकर कहा- “देखो, शांति! एक दिन तो व्रत भंग होने के कारण प्राण उत्सर्ग करूंगा ही; जो पाप हुआ है, उसका प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा। अब तक प्रायश्चित्त कर चुका होता, किन्तु केवल तुम्हारे अनुरोध के कारण कर न सका। लेकिन अब किसी दिन यह भी सम्भव हो जाएगा, विलम्ब नहीं है। उसी युद्ध मे मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। इस प्राण का परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन.....

झहंशांति ने बात काट कर कहा- “मैं तुम्हारी धर्मपी हूँ, सधर्मिणी हूँ-धर्म मे सहायक हूँ। तुमने अतिशय गुरु धर्म ग्रहण किया है, उसी धर्म की सहायता के लिए मैं आई हूँ। हम दोनो ही एक साथ रहकर उस धर्म मे सहायक होंगे, इसलिए घर त्याग कर आयी हूँ। मैं तुम्हारे घर मे वृद्धि ही करूंगी। विवाह इहकाल के लिए भी होता है और परकाल के लिए भी होता है। इहकाल के लिए जो विवाह होता है, मन मे समझ लो कि हमने वह किया ही नहीं। हमलोगो का विवाह केवल परकाल के लिए हुआ है। परकाल मे इसका दूसरा फल होगा, लेकिन प्रायश्चित्त की बात क्यों? तुमने कौन सा पाप किया है? तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेंगे? कौन कहता है तुम किसी दिन भी एकासन पर बैठे हो? फिर प्रायश्चित्त क्यों? हाय प्रभु तुम मेरे गुरु हो, क्या मैं तुम्हे धर्म सिखाऊँ? तुम वीर हो, लेकिन क्या मैं तुम्हे वीर-धर्म सिखाऊँ?”

जीवानंद ने आह्लाद से गदगद होकर कहा-“प्रिये! सिखाओ तो सही!”

शांति प्रसन्नचित्त से कहने लगी-“और भी देखो गोस्वामी जी! इहकाल मे ही क्या हमारा विवाह निष्फल है? तुम मुझसे प्रेम करते हो, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ- इससे बढ़कर इहकाल मे और कौन-सा फल हो सकता है? बोलो-वन्देमातरम्!”

इसके बाद ही दोनो ने एक स्वर से “वन्देमातरम्” गीत गाया।

भवानंद स्वामी एक दिन नगर मे जा पहुंचे। उन्होने प्रशस्थ राजपथ त्यागकर एक गली मे प्रवेश किया। गली के दोनो बाजू ऊंची अट्टालिकाएं हैं, केवल दोपहर के समय एक बार वहां भगवान सूर्य झांक लेते हैं, इसके बाद अंधकार ही अंधकार। गली मे घुसकर पास के ही एक दो-मंजिले मकान मे भवानंद ने प्रवेश किया। नीचे की मंजिल मे जहां एक अर्धवयस्का स्त्री रसोई बना रही थी, वही जाकर भवानंद स्वामी ने दर्शन दिया। वह स्त्री अर्धवयस्क, मोटी-झोटी, काली-कलूटी, मैली धोती पहने माथे के बाल ठीक खोपड़ी पर बांधे हुए, दाल की बटलोही मे कलछी डालकर ठन-ठन बजाती हुई बाएं हाथ से मुंह पर लटकानेवाले बालो को हटाली, कुछ मुंह से बड़बड़ाती, रसोई करती हुई सुशोभित हो रही थी। ऐसे ही समय भवानंद महाप्रभु ने घर मे प्रवेश कर कहा- “भाभी! राम-राम!”

भाभी भवानंद को देखकर अवाक होकर अपने हटे हुए कपड़े ठीक करने लगी। इच्छा हुई कि सिर का मोहन

जूड़ा खोल डाले, लेकिन खोल न सकी- हाथ मे कलछी थी। हाय हाय! उस जूड़े के जंजाल मे उसने एक बकुल पुष्प खोस रखा था। वस्त्रांचल से उसे ढंकने की कोशिश की, लेकिन यह क्या? आज तो एक पांच हाथ का टुकड़ा मात्र पहन रखा था। अतः अंग ढंक न सकी। वह पांच हाथ का कपड़ा ऊपर उठाती थी तो छाती खुलती थी, छाती ढांकती थे तो पीठ खुलती थी, लाचार बेचारी परेशान हो गई। किसी तरह उसने एक कोना खीचकर कान के पास तक लाकर आधा चेहरा ढांकने का भाव कर प्रतिज्ञा की कि दूसरी एक धोती खरीदूंगी और तब इसे कभी न पहनूंगी। इस तरह व्यस्त होने के बाद बोली-“कौन, गोसाईं ठाकुर! आओ-आओ! लेकिन भाई! यह हमे राम-राम के साथ प्रणाम क्यो?”

भवानंद-“तुम मेरी भाभी जो हो!”

गौरी-“अच्छा, आदर से कहते हो तो कह लो। प्रणाम किया ही है, तो खुश रहो! फिर तुम्हे प्रणाम करना ही चाहिए, मैं उम्र मे बड़ी जो हूं। लेकिन आखिर हो तो गोसाईं ठाकुर देवता ही!”

भवानंद स्वामी से गौरी की उम्र काफी बड़ी-“करीब पचीस वर्ष बड़ी है। लेकिन चतुर भवानंद ने उत्तर दिया-“भाभी! अरे तुम्हे रसीली देखकर भाभी कहता हूं। नही तो हिसाब जब किया गया था, तो तुम मुझसे छः वर्ष छोटी निकली थी। क्या याद नही है? हम लोगो मे सब तरह के वैष्णव है न। इच्छा है कि एक मठधारी ब्रह्मचारी के साथ तुम्हारी सगाई करा दूं, यही कहने आया हूं।?”

गौरी-“यह कैसी बात? अरे राम-राम! ऐसी बात भला कही जाती? मैं ठहरी विधवा औरत!”

भवानंद-“तो सगाई न होगी?”

गौरी-“तो भाई! जैसा समझो वैसा करो। तुम लोग पंडित आदमी ठहरे। हम लोग तो और है, क्या समझे? तो कब होगी सगाई?”

भवानंद ने बड़ी मुश्किल से हंसी रोककर कहा-“बास एक बार उस ब्रह्मचारी से मुलाकात होते ही पक्की हो जाएगी सगाई?”

गौरी जल गई। मन मे संदेह हुआ कि शायद सगाई की बात मजाक है। बोली-“है, जैसी, है वैसी है!”

भवानंद-“तुम जरा जाकर एक बार देख आओ। कह देना कि मैं आया हू- एक बार मिलना चाहता हूं।”

इस पर गौरी भात-दाल छोड़कर हाथ धोकर छमछम करती हुई सीढ़ियां तोड़ती ऊपर चढ़ने लगी। एक कमरे मे जमीन पर चटाई बिछाकर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी हुई हैं। लेकिन सौंदर्य पर एक घोर छाया है। मध्यान्ह के समय कलकलवाहिनी प्रसन्नसलिला, विपुल-जल-श्रोतवती नदी के ऊपर मेघ आने जैसी यह कैसी छाया है!

नदी-हृदय पर तरंगे उछल रही है, तटवर्ती कुसुमवृक्ष वायु के झोके मे मस्त झूम रहे हैं, पुष्प-भार से दबे जा रहे हैं, उनसे अट्टालिका-श्रेणी सुशोभित हैं। तरणी-श्रेणी के ताड़न से जल आंदोलित हो रहा है। यह भी वैसे ही पहले की तरह चारु, चिकने, चंचल, गुंथे केश, पहले का वैसा ही तेजपुंज ललाट और उस पर पतली तूलिका से खिंची हुई भौंहे, वही पहले जैसे चंचल मृग-नयन- लेकिन वैसे कटाक्षमय नही, वैसी लोलता नही, कुछ नम्र! अधरो पर वही दाड़िम लालिमा, वैसे ही सुधारसपूर्ण, वैसे ही वनलता-दुष्प्राप्य कोमलतायुक्त बाहु। लेकिन आज वह दीप्ति नही, वह उज्वलता नही, वह प्रखरता नही, वह चंचलता नही, वह रस नही है- शायद वह यौवन भी नही है। केवल सौन्दर्य और माधुर्यमात्र, नयी बात आ गयी है-गाम्भीर्य। इसे पहले देखने से जान पड़ता था कि मनुष्य-लोक की अतुलनीय सुन्दरी है अब देखने से जान पड़ता है कि कोई स्वर्ग की शापग्रस्त देवी है। उसके चारो तरफ दो-चार पुस्तके पड़ी हुई हैं। दीवार पर खूंटी के सहारे तुलसी की माला लटक रही है। दीवारो पर जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा, कालीयदमन, गोवर्धन-धारण आदि के चित्र टंगे हुए हैं। वे चित्र उसके स्वयं बनाये हुए हैं, उनके नीचे लिखा हुआ है-“चित्र या विचित्र!” ऐसे ही कमरे मे भवानन्द ने

प्रवेश किया।

भवानन्द ने पूछा-“क्यो कल्याणी! शारीरिक कुशल तो है?”

कल्याणी-“यह प्रश्न करना आप न छोड़ेगे? मेरे शारीरिक कुशल से आपका क्या मतलब?”

भवानन्द-“जो वृक्ष लगाता है, उसमे नित्य जल देता है-वृक्ष के बढ़ते से ही उसे सुख होता है। तुम्हारे मृत शरीर मे मैंने नवजीवन दिया है। वह बढ़ रहा है या नहीं, मैं क्यो न पूछूंगा?”

कल्याणी-“विक्ष-वृक्ष का क्या कभी कोई दाम होता है?”

भवानन्द-“जीवन क्या विष है?”

कल्याणी-“न होता तो अमृत ढालकर मे उसे ध्वंस करने को क्यो तैयार होती?”

भवानन्द-“बहुत दिनों से सोच रहा था-पूछूंगा, लेकिन पूछ नहीं सका। किसने तुम्हारे जीवन को विषमय बना दिया था?”

कल्याणी ने स्थिर भाव से उत्तर दिया-“मेरे जीवन को किसी ने विषमय नहीं बनाया : जीवन स्वयं विषमय है- मेरा जीवन विषमय है; आपका जीवन विषमय है : सभी का जीवन विषमय है।”

भवानन्द-“सच है, कल्याणी! मेरा जीवन तो अवश्य विषमय है।.....उसी दिन से तुम्हारा व्याकरण समाप्त हो गया है?”

कल्याणी-“नहीं?”

भवानन्द-“फिर क्या बात है?”

कल्याणी-“अच्छ नहीं मालूम होता।”

भवानन्द-“विद्या-अर्जन मे तुम्हारी कुछ प्रवृत्ति देखी थी। अब ऐसी अश्रद्धा क्यो?”

कल्याणी-“आप जैसे पण्डित जब महापापिष्ठ हैं, तो न पढ़ना-लिखना ही अच्छा है। मेरे पतिदेव की क्या खबर है, प्रभु?”

भवानन्द-“बारंबार यह संवाद क्यो पूछती हो? वो तो तुम्हारे लिए मृत समान है।”

कल्याणी-“मैं उनके लिए मृत हूँ; वे मेरे लिए नहीं।”

भवानन्द-“वह तुम्हारे लिये मृतवत् होंगे, यही समझकर तो तुमने विष खाया था? बार-बार यह बात क्यो कल्याणी?”

कल्याणी-“मर जाने से क्या संबंध मिट जाता है! वह कैसे है?”

भवानन्द-“अच्छे हैं।”

कल्याणी-“कहाँ है? पदचिन्ह मे?”

भवानन्द-“हां, वही है!”

कल्याणी-“क्या कर रहे है?”

भवानन्द-“जो कर रहे थे-दुर्ग-निर्माण, अस्त्र-निर्माण; उन्ही के द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्रो से सहस्त्रो सन्तान सज्जित हो रहे हैं। उन्ही की कृपा से अब हम लोगो को तोप, बन्दूक, गोला-गोली, बारूद आदि की कमी नहीं है। सन्तान गण मे वही श्रेष्ठ हैं। वे हम लोगो को महत् उपकार कर रहे हैं; वे हम लोगो के दाहिने हाथ हैं।”

कल्याणी-“मैं प्राण-त्याग न करती, तो इतना होता! जिसकी छाती पर छेदही कलसी बंधी हो, वह क्या कभी भवसागर पार कर सकता है! जिसके पैरो मे लौह सीकड़ पड़े हो, वह क्या कभी दौड़ सकता है! क्यो संन्यासी! तुमने अपना क्षार जीवन क्यो बचा रखा था?”

भवानन्द-“स्त्री सहधर्मिणी होती है, धर्म मे सहायक होती है।”

कल्याणी-“छोटे-छोटे धर्मों में। बड़े धर्मों के अनुसरण में कण्टक! मैंने विष-कटक द्वारा उनके अधर्म या कष्ट का उद्धार किया था। छिः, दुराचारी पामर ब्रह्मचारी! तुमने मेरे प्राण क्यों लौटाये?”

भवानन्द-“अच्छ, न तो मैंने जो किया है, उसे मुझे वापस कर दो। मैंने जो प्राण-दान किया है, क्या तुम उसे वापस कर सकती हो।”

कल्याणी-“क्या आपको पता है, मेरी सुकुमारी कैसी है?”

भवानन्द-“बहुत दिनों से उसकी खबर नहीं लगी। जीवानन्द बहुत दिनों से उधर गये ही नहीं।”

कल्याणी-“उसकी खबर क्या मुझे ला नहीं दे सकते? स्वामी मेरे लिए त्याज्य है; लेकिन जब जिन्दा रह गई हूँ तो कन्या को क्यों त्याग दूँ! अब तो सुकुमारी के पास जाने से ही जीवन में कुछ सुख मिल सकता है। लेकिन मेरे लिए इतना आप क्यों करोगे।”

भवानन्द-“करूंगा कल्याणी! तुम्हारे लिए कन्या ला दूंगा; लेकिन इसके बाद?”

कल्याणी-“इसके बाद क्या गोस्वामी?”

भवानन्द-“स्वामी”

कल्याणी-“उन्हे तो इच्छापूर्वक त्यागा है।”

भवानन्द-“यदि उनका व्रत पूर्ण हो जाए तो?”

कल्याणी-“तो मैं उनकी हूंगी। मैं जो बच गई हूँ, क्या वे यह जानते हैं?”

भवानन्द-“नहीं।”

कल्याणी-“आपसे क्या उनकी मुलाकात नहीं होती?”

भवानन्द-“होती है।”

कल्याणी-“मेरी बात कभी नहीं करते?”

भवानन्द-“नहीं! जो स्त्री मर गयी, उससे फिर पति का क्या सम्बन्ध!”

कल्याणी-“क्या कहा?”

भवानन्द-“तुम फिर विवाह कर सकती हो, तुम्हारे पुनर्जन्म हुआ है।”

कल्याणी-“मेरी कन्या ला दो!”

भवानन्द-“ला दूंगा! तुम फिर विवाह कर सकती हो?”

कल्याणी-“तुम्हारे साथ न?”

भवानन्द-“विवाह करोगी?”

कल्याणी-“तुम्हारे साथ”

भवानन्द-“यही मान लो।”

कल्याणी-“सन्तान धर्म कहां रहेगा?”

भवानन्द-“अतल जल में।”

कल्याणी-“यह तुम्हारा महाव्रत है?”

भवानन्द-“अतल जल में गया?”

कल्याणी-“किसलिए सब अतल जल में डुबाते हो?”

भवानन्द-“तुम्हारे लिए! देखो, मनुष्य हो, ऋषि हो, सिद्ध हो, देवता हो, सबका चित्त अवश्य होता है। सन्तान-धर्म मेरा प्राण है, लेकिन आज पहले-पहल करता हूँ, तुम प्राणों से भी बढ़कर प्राण हो। जिस दिन तुम्हें प्राण-दान किया, उसी दिन से मैं तुम्हारे पैरों पर गिर गया। मैं नहीं जानता था कि संसार में ऐसा रूप भी

हैं। ऐसी रूपराशि जीवन में कभी देखूंगा, यदि यह जानता तो कभी सन्तान-धर्म ग्रहण न करता। यह धर्म इस अग्नि में जलकर क्षार हो जाता है। धर्म जल गया है-प्राण है। आज चार वर्षों से प्राण भी जल रहा है, बचना नहीं चाहता। दाह! कल्याणी! दाह! ज्वाला! लेकिन जलने वाला, ईंधन अब बच नहीं गया है। प्राण जा रहा है। चार बरस से सह रहा हूँ; अब सहा नहीं जाता। क्या तुम मेरी होगी?"

कल्याणी-"तुम्हारे ही मुंह से सुना है कि सन्तान-धर्म का एक यह भी नियम है कि जिसकी इन्द्रिय परवश हो जाए, उसका प्रायश्चित्त मृत्यु है। क्या यह सच है?"

भवानन्द-"यह सच है।"

कल्याणी-"तो तुम्हारे लिए भी वही प्रायश्चित्त मृत्यु है?"

भवानन्द-"मेरे लिए एकमात्र प्रायश्चित्त मृत्यु है।"

कल्याणी-"तुम्हारी मनोकामना पूरी होने पर मरोगे?"

भवानन्द-"निश्चय मरूंगा!"

कल्याणी-"और यदि मैं मनोकामना पूरी न करूँ?"

भवानन्द-"तब भी मृत्यु निश्चय है। कारण, मेरी इन्द्रियां परवश हो चुकी हैं। आगामी युद्ध में....."

कल्याणी-"तुम अब विदा हो! मेरी कन्या भिजवा दोगे?"

भवानन्द ने आंसू भरी आंखों से कहा-"भिजवा दूंगा। क्या मेरे जाने पर भी मुझे हृदय में याद रखोगी?"

कल्याणी-"याद रखूंगी-व्रमच्युत विधर्मी के रूप में याद रखूंगी।"

भवानन्द विदा हुए। कल्याणी पुस्तक पढ़ने लगी।

भवानन्द विचार-सागर में गोते लगाते हुए मठ की तरफ चले। वे राह में अकेले चले आ रहे थे। वन में भी अकेले ही उन्होंने प्रवेश किया। अब उन्होंने देखा कि वन में उनके आगे-आगे एक आदमी चला जा रहा है।

भवानन्द ने पूछा-"कौन हो भाई?"

अग्रगामी व्यक्ति ने कहा-"जानना चाहते हो? उत्तर देता हूँ-एक पथिक"

भवानन्द-"वन्दे-"

वह आदमी बोला-"मातरम्।"

भवानन्द-"मैं भवानन्द स्वामी हूँ।"

अग्रगामी-"मैं धीरानन्द।"

भवानन्द-"धीरानन्द! कहां गये थे?"

धीरानन्द-"आपकी ही खोज में।"

भवानन्द-"क्यों?"

धीरानन्द-"एक बात कहने।"

भवानन्द-"कौन-सी बात?"

धीरानन्द-"अकेले में कहने की है।"

भवानन्द-"यही बताओ न, यह तो निर्जन स्थान है।"

धीरानन्द-"आप नगर में गए थे"

भवानन्द-"हाँ।"

धीरानन्द-"गौरी के घर?"

भवानन्द-"तुम भी नगर में गए थे क्या?"

धीरानंद- “वहां एक परम सुंदरी रहती है?”

भवानंद- कुछ विस्मित भी हुए डरे भी। बोले- “यह सब कैसी बातें हैं?”

धीरानंद- “आप उसके साथ मुलाकात की थी?”

भवानंद- “हसके बाद?”

धीरानंद- “आप उस कामिनी के प्रति अति अनुरक्त हैं?”

भवानंद- “(कुछ विचारकर) धीरानंद! तुमने क्यों इतनी खोज-बीन की। देखो धीरानंद! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सच है। लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त कितने लोग यह बात जानते हैं?”

धीरानंद- “और कोई नहीं।”

भवानंद- “तब तुम्हारा बंधन करने से ही मैं मुक्त हो सकता हूँ।”

धीरानंद- “कर सकते हो?”

भवानंद- “तब आओ, इस निर्जन स्थान में ही युद्ध करो। हो सकता तो मैं तुम्हारा बंधन कर कलंक से बचूँ या तुम मेरा बंधन कर दो, ताकि सारी ज्वालाओं में मेरी मुक्ति हो जाए। बोलो, पास में अस्त्र हैं?”

धीरानंद- “है! खाली हाथ किसकी मजाल है कि तुम्हारे सामने यह बातें करे। यदि युद्ध की ही तुम्हारी इच्छा है तो वही सही, पर संतान-संतान में विरोध निषिद्ध है किन्तु आत्महत्या के लिए किसी के साथ भी युद्ध करने में हर्ज नहीं। जो बात कहने के लिए मैं तुम्हें खोज रहा था, क्या वह सब सुन लेने पर युद्ध करना अच्छा न होगा?”

भवानंद- “हर्ज क्यों है कहो!”

भवानंद ने तलवार निकाल कर धीरानंद के कंधे पर रख दी। धीरानंद भागे नहीं।

धीरानंद- “मैं यह कह रहा था कि तुम कल्याणी से विवाह कर लो।”

भवानंद- “कल्याणी यह! भी जानते हो?”

धीरानंद- “विवाह क्यों नहीं कर लेते?”

भवानंद- “उसके तो पति जीवित हैं।”

धीरानंद- “वैष्णो का ऐसा विवाह होता है।”

भवानंद- “यह नीच वैरागियों की बात है-संतानों में नहीं। संतान की शादी नहीं होती।”

धीरानंद- “संतान-धर्म क्या अपरिहार्य है? तुम्हारे तो प्राण जा रहे हैं। छिः! छिः! मेरा कंधा न कट गया।”
(वस्तुतः धीरानंद के कंधे से रक्त निकल रहा था।)

भवानंद- “तुम किसलिए मुझे यह अधर्म-मति देने आए हो? अवश्य ही तुम्हारा कोई स्वार्थ है।”

धीरानंद- “वह भी कहने की इच्छा है। तलवार न धंसना, बताता हूँ। इस संतान-धर्म ने मेरी हड्डियों को जर्जर कर दिया है। मैं इसका परित्याग कर स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिताने के लिए उतावला हो रहा हूँ। मैं इस संतान-धर्म का परित्याग करूँगा। लेकिन क्या मेरे लिए घर जाकर बैठने का अवसर है। विद्रोही के रूप में अनेक लोग मुझे पहचानते हैं। घर जाकर बैठते ही शायद राजपुरुष सर उतार ले जाएंगे। अथवा सन्तान लोग ही विश्वासघात समझकर मार डालेंगे। इसीलिए तुम्हें भी अपना साथी बना लेना चाहता है।” भवानन्द- “क्यों, मुझे क्यों?”

धीरानन्द- “यही असली बात है। सन्तान गण तुम्हारे अधीन है। सत्यानन्द अभी यहाँ है नहीं; इनके नायक हो तुम। इस सेना को लेकर युद्ध करो, तुम्हारी विजय होगी, इसका मुझे विश्वास है। युद्ध में विजय प्राप्त कर क्यों नहीं तुम अपने नाम से एक राज्य स्थापित करते? सेना तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी है। तुम राजा हो, कल्याणी

तुम्हारी मन्दोदरी हो, मैं भी तुम्हारा अनुचर बनकर स्त्री-पुत्र का मुंह देखकर दिन बिताऊं और आशीर्वाद करूं। सन्तान-धर्म को अलग जल में डुबो दो!”

भवानन्द ने धीरानन्द के कंधे पर से तलवार हटा ली; बोले—“धीरानन्द! युद्ध करो! मैं तुम्हारा वध करूंगा। मैं इन्द्रिय-परवश हो सकता हूँ, लेकिन विश्वासघातक नहीं। तुमने मुझे विश्वासघाती होने का परामर्श दिया है—स्वयं भी विश्वासघातक हो। तुम्हें सामने मारने से ब्रह्महत्या भी न होगी। मैं तुम्हारा वध करूंगा!”

बात समाप्त होते-न-होते धीरानन्द दम भरकर भागे। भगवान ने पीछा न किया। भगवान कुछ अनमने से थे; उन्होंने अब देखा, धीरानन्द का कहीं पता न था।

मठ में जाकर और फिर भवानन्द जंगल में घुस गए। उस जंगल में एक जगह प्राचीन अट्टालिका का भग्नावशेष है। उस ढूँहे पर घास-पात आदि जम आई हैं। वहाँ असंख्य सर्पों का वास है। ढूँहे की जमीन अपेक्षाकृत साफ और ऊंची थी। भवानन्द उसी पर जाकर बैठे और चिन्ता में मग्न हो गए।

भयानक अंधेरी रात थी। उस पर वह जंगल अति विस्तृत, एकदम सूना जंगल वृक्ष-लताओं से घना और दुर्भेद्य, गमनागमन में दुष्कर है। आवाज आती भी है तो भूखे शेर की हुंकार, अन्यान्य पशुओं के भागने या बोलने का शब्द, कभी पक्षियों के पर फटफटाने की आवाज, तो कभी भागते हुए पशुओं के पैर की खरखराहट। ऐसे निर्जन स्थान में उस ढूँहे पर अकेले भगवान बैठे हुए हैं। उनके लिए इस समय पृथ्वी है ही नहीं, या केवल उपादान मात्र है। भवानन्द निश्चल थे, श्वास-प्रश्वास अति सूक्ष्म, अपने में ही विलीन, माथे पर हाथ रखे बैठे थे। मन में सोचते थे—जोहोना होना है, अवश्य होगा। भागीरथी की जल-तरंगों के बीच क्षुद्र हाथी की तरह इंद्रिय-स्रोत में डूब गया, यही दुःख है। एक क्षण में इंद्रियों का ध्वंस हो सकता है, शरीर-निपात कर देने से। मैं इसी इंद्रिय के वश में हो गया? मेरा मरना ही अच्छा है। धर्मत्यागी! छिः! छिः! मैं अवश्य मरूंगा। इसी समय माथे पर पेचक ने भयानक शब्द किया। भवानन्द अब खुलकर बड़बड़ाने लगे—“यह कैसा शब्द? कान में ऐसा सुनाई पड़ा, मानो भय का आह्वान हो। मैं नहीं जानता, मुझे कौन बुलाता—यह किसका शब्द है? किसने राह बतायी, किसने मरने के लिए कहा? पुण्यमय अनन्त! तुम शब्द-शब्दमय हो; लेकिन तुम्हारे शब्द का अर्थ तो मैं समझ नहीं पाता हूँ।”

इसी समय भीषण जंगल में से मधुर साथ ही गंभीर, प्रेम भरा मनुष्य-कण सुनाई दिया—“आशीर्वाद देता हूँ, धर्म में तुम्हारी मति अवश्य होगी!”

भवानन्द के शरीर के रोगटे खड़े हो गये—यह क्या? यह तो गुरुदेव की आवाज है—

“महाराज! आप कहां हैं? इस समय सेवक को दर्शन दीजिये।”

लेकिन किसी ने भी दर्शन न दिया, किसी ने भी उत्तर न दिया। भवानन्द ने बार-बार बुलाया, लेकिन कोई उतर न मिला। इधर-उधर खोजा, कहीं कोई न था।

रात बीतने पर जब जंगल में प्रभात का सूर्य उदय हुआ—जंगल में प्रभात का सूर्य उदय हुआ—जंगल में पत्तों की हरियाली जब चमक उठी, तब भवानन्द मठ में वापस आ गए। उनके कानों में आवाज पहुंची—“हरे मुरारे! हरे मुरारे!” पहचान गए कि यह सत्यानन्द की आवाज है। समझ गए कि प्रभु वापस आ गए!

जीवानन्द के कुटी से बाहर चले जाने पर शान्ति देवी फिर सारंगी लेकर मृदु स्वर में गाने लगी—
“प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहित वहित्र चरित्रमखेदं,
केशवधूत मीन शरीर,

जय जगदीश हरे!“

गोस्वामी विरचित स्तोत्र को जिस समय सारंगी की मधुर ध्वनि पर कोमल स्वर से शांति गाने लगी, उस समय वह स्वर-लहरी वायुमण्डल पर इस तरह तंरगित हो उठी, जिस तरह जल में अवगाहन करने पर स्रोत वाहिनी नदी में धार कुण्डलाकार होकर लहराने लगती है। शांति गाने लगी!

“निन्दसि यज्ञविधेरहः श्रुतिजात

सदस्य हृदय दर्शित पशुघातम,

केशव धृत बुद्ध शरीर

जय जगदीश हरे!“

इसी समय किसी ने बाहर से गंभीर स्वर में-मेघगर्जन के समान गंभीर स्वर में गाया!

“म्लेच्छ निवहनिधने कल्पयसि करवालम्

धूमकेतुमिति किमपि करालम्

केशवधृत कल्कि शरीर

जय जगदीश हरे!“

शांति ने भक्ति-भाव से प्रणत होकर सत्यानन्द के पैरों की धूलि ग्रहण की और बोली-

“प्रभो! मेरा ऐसा कौन-सा भाग्य है कि श्री पादपद्मों का यहां दर्शन मिला। आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना होगा?” यह कहकर शांति ने फिर स्वर-लहरी छोड़ी!

“भवचरणप्रणता वयमिति भावय कुरु कुशल प्रणतेषु।“

सत्यानन्द ने कहा-“तुम्हें मैं पहचानता न था, बेटी! रस्सी की मजबूती न जानकर मैंने उसे खींचा था। तुम मेरी अपेक्षा ज्ञानी हो। इसका उपाय तुम्हीं कहो। जीवानन्द से न कहना कि मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम्हारे प्रलोभन से वे अपनी जीवन-रक्षा कर सकेंगे-इतने दिनों से कर ही रहे हैं ऐसा होने से मेरा कार्योंद्धार हो जाएगा।“

शांति के उन विशाल लोल कटाक्षों में निदाघ-कादम्बिनी में विराजित बिजली के सामान घोर रोष प्रकट हुआ। उसने कहा-

“यह क्या कहते हैं महाराज! मैं और मेरे पति एक आत्मा हैं। मरना होगा तो वे मरेगे ही, इसमें मेरा नुकसान ही क्या है। मैं भी तो साथ मरूंगी! उन्हें स्वर्ग मिलेगा तो क्या मुझे स्वर्ग न मिलेगा?”

ब्रह्मचारी ने कहा-देवी! मैं कभी हारा न था, आज तुमसे तर्क में हार मानता हूँ। मां! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ-संतान पर स्नेह रखो। जीवानन्द के प्राणों की रक्षा करो। इसी से मेरा कार्योंद्धार होगा।

बिजली हंसी। शांति ने कहा-मेरे स्वामी धर्म मेरे स्वामी के ही हाथ हैं। मैं उन्हें धर्म से विरत करनेवाली कौन हूँ? इहलोक में स्त्री का देवता पति है : किंतु परकाल में सबका पिता धर्म होता है। मेरे समीप मेरे पति बड़े हैं उनकी अपेक्षा मेरा धर्म बड़ा है-उससे भी बढ़कर मेरे लिए पति का धर्म है। मैं अपने धर्म को जिस दिन चाहूँ जलांजलि दे सकती हूँ, लेकिन क्या स्वामी के धर्म को जलांजलि दे सकती हूँ? महाराज! तुम्हारी आज्ञा पर मरना होगा तो मेरे स्वामी मरेगे, मैं मना नहीं कर सकती।

इस पर ब्रह्मचारी ने ठंडी सांस भरकर कहा-“मां! इस घोर व्रत में बलिदान ही है। हम सबको बलिदान चढ़ाना पड़ेगा। मैं मरूंगा जीवानन्द, भवानन्द-सभी मरेगे, शायद तुम भी मरोगी। किन्तु देखो, कार्य पूरा करके ही मरना होगा, बिना कार्य के मरना किस काम का? मैंने केवल जन्मभूमि को ही मां माना था और किसी को भी मां नहीं कहा, क्योंकि सुजला-सुफला माता के अतिरिक्त मेरी और कोई माता नहीं। अब तुम्हें भी मां

कहकर पुकारा है। तुम माता होकर हम संतानो का कार्य सिद्ध करो। जिससे हमारा कार्योद्धार हो वही करो-
जीवानन्द की प्राण-रक्षा करना, अपनी रक्षा करना!

यही कहकर सत्यानन्द-हरे मुरारे, मधुकैटभारे? गाते हुए चले गये।

क्रमशः सन्तान समप्रदाय में समाचार प्रचारित हुआ कि सत्यानन्द आ गये हैं और सन्तानो से कुछ कहना चाहते हैं। अतः उन्होने सबको बुलवाया है। यह सुनकर दल-के-दल सन्तान लोग आकर उपस्थित होने लगे। चांदनी रात में नदी-तट पर देवदारु के वृहत् जंगल में आम, पनस, ताड़, वट, पीपल, बेल, शाल्मली आदि पेड़ों के नीचे करीब दस सहस्र सन्तान आ उपस्थित हुए। सब आपस में सत्यानन्द के लौट आने का समाचार सुनकर महाकोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किसलिए वहां गये थे- यह साधारण लोग जानते न थे। अफवाह थी कि वे सन्तानो की मंगलकामना से प्रेरित होकर हिमालय पर्वत पर तपस्या करने गये थे। सब आपस में कानाफूसी करने लगे-

“महाराज की तपस्या सिद्ध हो गयी है- अब हम लोगो का राज्य होगा।” इस पर बड़ा कोलाहल होने लगा। कोई चीत्कार करने लगा-मारो-मारो, पापियो को मारो। कोई कहता-“जय-जय! महाराज की जय! कोई गाने लगा- हरे मुरारे मधुकैटभारे ! किसी ने “वंदेमारम” गाना गाया। कोई कहता-“भाई ! ऐसा कौन दिन होगा कि तुच्छ बंगाली होकर भी मैं रणक्षेत्र में शरीर उत्सर्ग करूंगा।” कोई कहता-- “भाई ! ऐसा कौन दिन होगा कि अपना ही धर्म हम स्वयं भोग करेंगे।” इस तरह दस सहस्र मनुष्यो के कण्ठ-स्वर से निकली गगनभेदी ध्वनि जंगल, प्रान्त, नदी, वृक्ष, पहाड़ सब कांप उठे।

एकाएक शब्द हुआ- वन्देमातरम और लोगो ने देखा कि ब्रह्मचारी सत्यानन्द सन्तानो के मध्य आकर खड़े हो गये। इस समय दस सहस्र-मस्तक उसी चांदनी में वनभूमि पर प्रणत हो गये। बहुत ही ऊंचे स्वर में, जलद गंभीर शब्दों में सत्यानन्द ने दोनों हाथ उठाकर कहा- “शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, वनमाली बैकुण्ठनाथ जो केशिमथन मधु-मुर-नरकमर्दन, लोक-पालक है वे तुम लोगो के बाहुओं में बल प्रदान करे, मन में भक्ति दे, धर्म में शक्ति दे ! तुम सब लोग मिलकर एक बार उनका गुणगान करो।”

इस पर दस सहस्र कण्ठों से एक साथ गान होने लगा।

“जय जगदीश हरे।

प्रलयपयोधि जले धृतवानसि वेदं

विदित विहिवमखेदम

जय जगदीश हरे।”

इसके उपरान्त सत्यानन्द महाराज उन लोगो को पुनः आशीर्वाद प्रदान कर बोले-

“संतानो ! तुम लोगो से आज मुझे कुछ विशेष बात कहनी है। टॉमस नाम के एक विधर्मी दुराचारी ने अनेक संतानो का नाश किया है। आज रात हम लोग उसका ससैन्य वध करेंगे ! जगदीश्वर की ऐसी ही आज्ञा है। तुम लोग क्या चाहते हो ?”

भयानक हर्षध्वनि से जंगल विदीर्ण उठा- “अभी मारेंगे ! बताओ, चलो, उन सबको दिखा दो। मारो ! मारो ! शत्रुओं का नाश करो ?” इसी तरह के शब्द दूर के पहाड़ों से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगे। इस पर सत्यानन्द फिर कहने लगे- “उसके लिए हम हम लोगो को जरा धैर्य धारण करना पड़ेगा। शत्रुओं के पास तोप है; बिना तोप के उनके साथ युद्ध हो नहीं सकता। विशेषतः वे सब वीर-जाति के हैं। हमारे पदचिन्ह दुर्ग से 17 तोपे आ रही हैं। तोपों के पहुंचते ही हम लोग युद्ध आरंभ करेंगे। यह देखो, प्रभात हुआ चाहता है। ब्रह्ममुहूर्त के 4 बजते ही....लेकिन यह क्या” --

“गुडूम-गुडूम-गुम! अकस्मात् चारो तरफ विशाल जंगल में तोपो की आवाज होने लगी। यह तोप अंगरेजो की थी। जाल में पड़ी हुई मछली की तरह कप्तान टॉमस ने सन्तानो को इस जंगल में घेरकर बंध करने का उद्योग किया था।

“गुडूम गुडूम गुम!” -- अंगरेजों की तोपे गर्जन करने लगी। वह शब्द समूचे जंगल में प्रतिध्वनित होकर सुनाई पड़ने लगा। वह ध्वनि नदी के बांध से टकराकर सुनाई पड़ी। सत्यानन्द ने तुरंत आवाज दी- “देखो, किसकी तोपे है? कई सन्तान तुरंत घोड़े पर चढ़कर देखने के लिए चल पड़े। लेकिन उन लोगो के जंगल से निकलते ही उन पर सावन की बरसात के समान गोले आकर पड़े। अश्वसहित उन सबने वही अपना प्राण त्याग किया। दूर से सत्यानन्द ने देखा, बोल - “पेड़ पर चढ़कर देखो!” उनके कहने के साथ जीवानन्द ने एक पेड़ पर ऊंचे चढ़कर बताया-“अंगरेजो की तोपे!” सत्यानन्द ने पूछा -“अश्वरोही सैन्य है या पदातिक?”

जीवानन्द - “दोनो है?”

सत्यानन्द - “कितने है?”

जीवानन्द - “अन्दाज नहीं लग सकता। वे सब जंगल की आड़ से बाहर आ रहे है?”

सत्यानन्द - “गोरे है या केवल देशी फौज?”

जीवानन्द - “गोरे है।”

अब सत्यानन्द ने कहा - “तुम पेड़ से उतर आओ।” जीवानन्द पेड़ से उतर आये।

सत्यानन्द ने कहा - “तुम दस हजार सन्तान यहां उपस्थित हो। देखना है, क्या कर सकते हो! जीवानन्द ! आज के सेनापति तुम हो।”

जीवानन्द हर्षोत्फुल्ल होकर एक छलांग में घोड़े पर सवार हो गये। उन्होंने एक बार नवीनानन्द की तरफ ताककर इशारे में ही कुछ कहा-कोई उसे समझ न सका। नवीनानन्द ने भी इशारे में ही उत्तर दिया। केवल वे दोनो ही आपस में समझ गये कि शायद इस जीवन में यह आखिरी मुलाकात है; पर नवीनानन्द ने दाहिनी भुजा उठाकर लोगो से कहा-“भाइयो! समय है, गाओ -- “जय जगदीश हरे!” दस सहस्र सन्तानो के मिलित कण्ठ ने आकाश, भूमि, वन-प्रांत को कंपा दिया। तोप का शब्द उस भीषण हुंकार में डूब गया। दस सहस्र सन्तानो ने भुजा उठाकर गाया--

“जय जगदीश हरे!

म्लेच्छ निवहनिधने कलयसि करवालम्”

इसी समय अंगरेजो की गोली-दृष्टि जंगल का भेदन करती हुई सन्तानों पर आकर पड़ने लगी। कोई गाता-गाता छिन्नमस्तक छिन्न-बाहु छिन्न-हृत्पिण्ड होकर जमीन पर गिरने लगा। लेकिन गाना बन्द न हुआ, वे सब गाते ही रहे - “जय जगदीश हरे!”

गाना समाप्त होते ही सब निस्तब्ध हो गये। वह सारा वातावरण - नदी, जंगल, पहाड़ - एकदम निस्तब्ध हो गया। केवल तोपो का गर्जन गोरो के अस्त्रो की झंकार और पद-ध्वनि दूर से सुनाई पड़ने लगी।

उस निस्तब्धता को भंग करते हुए सत्यानन्द ने कहा - “भगवान तुम्हारी रक्षा करेगे। तोप कितनी दूरी पर है?”

ऊपर से आवाज दी “इसी जंगल के समीप एक छोटा मठ है, उसी के पास।”

सत्यानन्द - “तुम कौन हो?”

ऊपर से आवाज आयी - “मैं नवीनानन्द।”

अब सत्यानन्द ने कहा - “तुम लोग दस हजार हो , तुम्हारी विजय होगी! क्या देखते हो छीन लो तोपे !”
यह सुनते ही अश्वारोही जीवानन्द ने आवाज दी - “आओ भाइयो,मारो !”

इस पर दस सहस्र सन्तान सेना, अश्वारोही और पदातिक, तीर की तरह धावा बोलती आगे बढ़ी। पदातिको के कन्धे पर बन्दूक, कमर में तलवार और हाथ में भाले थे। बहुत-से सन्तानों ने बिना युद्ध किये ही गिरकर प्राण-त्याग किया। एक ने जीवानन्द से कहा - “जीवानन्द! अनर्थक प्राणि-हत्या से क्या फायदा है?”

जीवानन्द ने मुड़कर देखा, कहने वाले भवानन्द थे। जीवानन्द ने पूछा - “तब क्या करने को कहते हो?”

भवानन्द - “वन के अन्दर रहकर वृक्षों का आश्रय लेकर अपनी प्राण-रक्षा करे। तोपों के सामने खुले मैदान में बिना तोप की सन्तानसेना एक क्षण भी टिक न सकेगी। लेकिन जंगल में पेड़ों की आड़ लेकर हम लोग बहुत देर तक युद्ध कर सकते हैं।”

जीवानन्द - “तुम ठीक कहते हो! लेकिन प्रभु की आज्ञा है कि तोप छीन जाए। अतः हम लोग तोप छीनके ही जाएंगे।”

भवानन्द - “किसकी हिम्मत है कि तोप छीन सके। लेकिन यदि जाना ही है, तो तुम ठहरो, मैं जाता हूँ।”

जीवानन्द - “यह न होगा, भवानन्द! आज मेरे मरने का दिन है।”

भवानन्द - “आज मेरे मरने का दिन है।”

जीवानन्द - “मुझे प्रायश्चित्त करना होगा।”

भवानन्द - “तुम निष्पाप हो, तुम्हें प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं। मेरा चरित्र कलुषित है; मुझे ही मरना होगा। तुम ठहरो, मैं जाता हूँ।”

जीवानन्द - “भवानन्द, तुमसे क्या पाप हुआ है, मैं नहीं जानता; लेकिन तुम्हारे रहने से सन्तानों का उद्धार होगा। मैं जाता हूँ।”

भवानन्द ने चुप होकर फिर कहा - “मरना होगा तो आज ही मरेगा, जिस दिन जरूरत होगी, उसी दिन मरेगा। मृत्यु के लिए मुझे समय-काल की जरूरत नहीं।”

जीवानन्द - “तब आओ!”

इस बात पर भवानन्द सबके आगे हुए। दल-के-दल, एक-एक-कर सन्तान गोले खाकर मरकर गिरने लगे। सन्तान-सैन्य बिखरने लगी। तीर की तरह आगे बढ़ते हुए सन्तान गोला खाकर कटे वृक्ष की तरह नीचे गिरते थे। सैकड़ों लाशें पट गयीं। इसी समय भवानन्द ने चिल्लाकर कहा - “आज इस तरंग में संतानों को कूदना है कौन आता है भाई?”

इस पर सहस्र-सहस्र कण्ठों से आवाज आयी-“वन्देमातरम्!” दनादन गोले आ रहे थे। तीर गिर रहे थे, लेकिन संतान सैन्य तीर की तरह आगे बढ़ती ही जाती थी। सबका लक्ष्य तोप छीनना था।

इसके बाद तो दस हजार सन्तान सैन्य ‘वन्देमातरम्’ गाती हुई, अपने भाले आगे कर तीर की तरह तापों पर जा पड़ी। यद्यपि वे लोग गोले और गोलियों की बौछार से क्षत-विक्षत हो चुके थे, लेकिन पलटते नहीं, भागे नहीं घनघोर युद्ध शुरू हो गया। लेकिन इसी समय रण-कुशल टॉमस की आज्ञा से एक सेना बन्दूकों पर संगीने चढ़ाकर पीछे से निकलकर संतानों के दाहिने बाजू पर गिरी। अब जीवानन्द ने कहा-“भवानन्द! तुम्हारी ही बात ठीक थी। अब सन्तान-सैन्य को नाश करने की जरूरत नहीं लौटाओ इन्हे।”

भवानन्द - “अब कैसे लौट सकते हैं? अब तो जो पीछे पलटेगा, वही मारा जाएगा।”

जीवानन्द - “सामने और दाहिने से आक्रमण हो रहा है। आओ, धीरे-धीरे बाएं होकर निकल चले।”

भवानन्द - “बाएं घूमकर कहां जाओगे? बाएं नदी है - वर्षा से भरी हुई नदी। इधर गोले से बचोगे, तो नदी

मे डूबकर मरोगे ।’

जीवानन्द - “मुझे याद है, नदी पर एक पुल है ।’

भवानन्द - “लेकिन इतनी संख्या मे सन्तान जब पुल पर एकत्र हो जाएंगे, तो एक ही तोप उनका समूल नाश कर देगी ।’

जीवानन्द - “तब एक काम करो । आज तुमने जो शौर्य दिखाया है, उससे तुम सब कुछ कर सकते हो । थोड़ी सेना के साथ तुम सामना करो । मैं अवशिष्ट सेना को बाएं घुमाकर निकाल ले जाता हूं । तुम्हारे साथ की सेना तो अवश्य ही विनष्ट होगी, लेकिन अवशिष्ट सन्तान सेना नष्ट होने से बच जाएगी ।’

भवानन्द - “अच्छा, मैं ऐसा ही करूंगा ।’

इस तरह दो हजार सैनिकों के साथ भवानन्द के सामने से फिर गोलन्दाजो पर आक्रमण किया ।

उनमे अपूर्व उत्साह था । घोरतर युद्ध होने लगा । गोलन्दाज सेना उनके विनाश मे और तोप-रक्षा मे संलग्न हुई । सैकड़ों सन्तान कट-कटकर गिरने लगे । लेकिन प्रत्येक सन्तान अपना बदला लेकर मरता था ।

इधर अवसर पाकर जीवानन्द अवशिष्ट सेना के साथ बाएं मुड़कर जंगल के किनारे से आगे बढ़े । कप्तान टॉमस के सहकारी लेफ्टिनेट वाटसन ने देखा कि सन्तानों का बहुत बड़ा दल भागने की चेष्टा मे बाएं घूमकर जाना चाहता है । इस पर उन्होंने देशी सिपाहियों की सेना लेकर उनका पीछा किया ।

कप्तान टॉमस ने भी यह देखा । सन्तान-सेना का प्रधान भाग इस तरह गति बदल रहा है- यह देखकर उन्होंने सहकारी से कहा - “मैं दो-चार सौ सिपाहियों के साथ सामने की सेना को मारता हूं, तुम शेष सेना के साथ उन पर धावा करो । बाएं से वाटसन जाते हैं, दाहिने से तुम जाओ । और देखो, आगे जाकर पुल का मुंह बन्द कर देना । इस तरह वे सब तरह से घिर जाएंगे । तब उन्हें फंसी चिड़िया की तरह मार गिराओ । देखना, देशी फौज भागने मे बड़ी तेज होती है, अतः सहज ही उन्हें फंसा न पाओगे । अश्वारोही सेना को व न सके अन्दर से छिपकर पहले पुल के मुंह पर पहुंच जाने को कहो, तब वे फंस सकेगे ।’

कप्तान टॉमस ने, जो कुशल सेनापति था, अपने अहंकार के वश होकर यही भूल की । उसने सामने की सेना को तृणवत समझ लिया था । उसने केवल दो सौ पदतिक सैनिकों को अपने पास रहने दिया और शेष सबको भेज दिया । चतुर भवानन्द ने जब देखा कि तोप के साथ समूची सेना उधर चली गयी और सामने की छोटी सेना सहज ही वध्य है, तो उन्होंने अपनी सेना को जोश दिलाया - “क्या देखते हो, सामने मुट्ठी भर अंगरेज है, मारो ! इस पर वह संतान सेना टॉमस की सेना पर टूट पड़ी । उस आक्रमण को थोड़े-से अंगरेज सह न सक; मूली की तरह वे कटने लगे । भवानन्द ने स्वयं जाकर कप्तान टॉमस को पकड़ लिया । कप्तान अंत तक युद्ध करता रहा । भवानन्द ने कहा - “कप्तान साहेब ! मैं तुम्हे मारूंगा नहीं, अंगरेज हमारे शत्रु नहीं है । क्यों तुम मुसलमानों की सहायता करने आये ? तुम्हें प्राणदान तो देता हूं, लेकिन अभी तुम बन्दी अवश्य रहोगे । अंगरेजों की जय हो, तुम हमारे मित्र हो ।’

कप्तान ने भवानन्द को मारने के लिए संगीन उठायी, लेकिन भवानन्द से शेर की तरह जकड़े हुए थे, वह हिल न सका । तब भवानन्द रासने अपने सैनिकों से कहा - “बांधो इन्हे ।’ दो-तीन सन्तानों ने टॉमस को बांध लिया । भवानन्द ने कहा - “इन्हे घोड़े पर बैठाकर ले चलो । हम लोग जीवानन्द की सहायता को जाते हैं ।’

इसी तरह वह अल्पसंख्यक सन्तान-सेना कप्तान टॉमस को कैदी बनाकर घोड़े पर चढ़ भवानन्द के साथ जीवानन्द की सहायता के लिए आगे बढ़ी ।

जीवानन्द की सेना का उत्साह टूट चुका था, वह भागने को तैयार थी । लेकिन जीवानन्द और धीरानंद ने उन्हें समझाकर किसी तरह ठहराया । परन्तु सब सेना को जीवानन्द और धीरानंद पुल की तरफ ले गये । वहां पहुंचते

ही एक तरफ से हेनरी ने और दूसरी तरफ से वाटसन ने उन्हे घेर लिया। अब सिवा युद्ध के परित्राण न था। इधर सेना भग्नोत्साह थी।

इसी समय टॉमस की तोपे पास आ पहुंची। अब सन्तानो का दल छिन्न-भिन्न होने लगा। उन्हे प्राण-रक्षा की कोई आशा न रही। जिसे जिधर राह मिली, भागने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने उन्हे बहुत संयत करने की चेष्टा की, लेकिन कोई फल न हुआ, संतानो का दल तितर-बितर होने लगा। इसी समय ऊंची आवाज मे सुनाई दिया - “पुल पर जाओ, पुल पर जाओ! उस पार चले जाओ, अन्यथा नदी मे डूब मरोगे।” अंगरेजो की सेना की तरफ मुंह किये हुए पुल पर चले जाओ!

जीवानन्द ने देखा कि कहनेवाले भवानंद सामने है। भवानन्द ने कहा, -“जीवानन्द, तुम सेना को पुल पर ले जाओ। दूसरे प्रकार से रक्षा नहीं है।” यह सुनते ही संतान-सेना क्रमशः पुल पर पहुंचने लगी। थोड़ी ही देर मे समूची संतान-सेना पुल पर जा पहुंची। भवानन्द, जीवानन्द धीरानन्द सब एकत्र थे। भवानन्द ने जो कुछ कहा था, वही हुआ। अंगरेजो की तोपे पुल के मुंह पर लगी थी और वे गोले उगलने लगी। भयानक संतान-क्षय होने लगा। यह देखकर भवानन्द ने कहा - “जीवानन्द! यह एक तोप हमारा नाश कर डालेगी! क्या देखते हो, जाओ हम तीनों उस पर टूटकर अधिकार ले।”

भवानंद के यह कहते ही जय नाद उठा -“वन्देमातरम्!” और उसी समय तीन तलवारे पुनः सिरो पर घूम उठी। तोपची तमाशा ही देखते रह गये। हेनरे और वासटन दूर खड़े अहंकार और प्रसन्नता मे इसे खिलवाड़ और मूर्खता समझते रहे। किन्तु इसी समय रण का पास पलट गया। पलक मारते ही तीनों सन्तान-नायक तोपचियो पर जा पड़े। तोपचियों के सिर धड़ से कब जुदा हुए कुछ पता नहीं। उनकी मोह-निद्र टूटी तब, जब बिजली की तरह तलवार चमकाते हुए भवानन्द स्वयं तोप पर खड़े हो गये और बोल -“वन्देमातरम्!” सहस्रो कंटो से निकला -“वन्देमातरम्!” उसी समय जीवानन्द ने तोप का मुंह अंगरेजी सेना की तरफ कर दिया और तोप प्रति-क्षण आग उगलने लगी। अब भवानंद ने कहा - “जीवानंद भाई! यह क्षणिक जीत है, अब तुम संतानो को लेकर सकुशल पार चले जाओ। केवल बीस तोप भरनेवाले और मृत्यु का वरण करनेवाले संतानो को तोप की रक्षा के लिए छोड़ दो।”

ऐसा ही हुआ। बीस संतान तोप के इर्द-गिर्द आ डटे। शेष समूची सेना जीवानन्द और धीरानन्द के साथ पार पहुंचने लगी। उस समय भवानंद क्रुद्ध गजराज हो रहे थे। पुल की संकरी जगह पर तोप लगाकर वे लगे गोरी वाहिनी का नाश करने। दल-के-दल तोप छीनने के लिए आगे बढ़ते थे और मरकर ढेर बन जाते थे। उस समय वे बीस युवक अजेय थे। ये लोग शीघ्रता इसलिए कर रहे थे कि अंगरेजो की शेष तोपे पहुंचने के पहले तक ही यह सारी अजेय लीला है। लेकिन भगवान को तो कुछ और ही करना था। एकाएक जंगल के अन्दर से बहुत-सी तोपो का गर्जन सुनाई पड़ने लगा। दोनो ही दल अवाक-रिस्पन्द होकर देखने लगे कि ये किसकी तोपे है?

थोड़ी ही देर मे लोगो ने देखा कि जंगल के अन्दर से महेन्द्र की सत्रह तोपे, तीन तरफ से घेरा, बांधे हुए आग उगलती चली आ रही है। अंगरेजो की उस देशी फौज मे महामारी आ गयी- दल-के-दल साफ होने लगे। यह देख शेष यवन-सिपाही भागने लगे। उधर जीवानंद और धीरानन्द ने भी जैसे ही वातावरण समझा, तैसे ही उनका साग क्रोध पलट पड़ा और पलट पड़ी सन्तान-सेना। वे भागती हुई यवन-सेना को घेरने और मारने लगे। अवशिष्ट रह गये यही कोई तीस-चालीस गोरे। वह वीर जाति वैसे ही डटी रही। अब भवानन्द ने उन पर धावा बोलने के लिए हाथ उठाया ही था कि जीवानन्द ने कहा - “भवानन्द! महेन्द्र की कृपा से पूर्ण रण-विजय हुई है; अब व्यर्थ इन्हे मारने से क्या फायदा? चलो लौट चले।”

भवानन्द ने कहा - “कभी नहीं, जीवानंद! तुम खड़े होकर तमाशा देखो। एक के भी जिंदा रहते भवानन्द वापस नहीं हो सकता। जीवानन्द! तुम्हें कसम है, खड़े होकर चुपचाप देखो। मैं अकेले इन सबको मारुंगा।”

अभी तक कप्तान टॉमस घोड़े पर बंधे हुए थे। भवानन्द ने आक्रमण के समय कहा - “उस अंगरेज को मेरे सामने रखो; पहले यह मरेगा, फिर मैं मरुंगा।”

टॉमस हिन्दी समझता था। उसने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी- “वीरो! मैं तो मरे के समान हूँ। इंगलैण्ड की मान-रक्षा करना, तुम्हें मातृभूमि की कसम है! पहले मुझे मारो, इसके बाद प्रत्येक अंगरेज मारकर अपनी जगह मरे।”

“धांय” एक शब्द हुआ और तुरन्त कप्तान टॉमस मस्तक में गोली लगने से मरकर गिर पड़ा। यह गोली उसी के एक सिपाही द्वारा चलायी गयी थी। इसके बाद उन सबने आक्रमण किया। अब भवानन्द ने कहा - “आओ भाई! अब कौन ऐसा है जो भीम, नकुल, सहदेव बनकर मेरे साथ मरने को तैयार है?”

इतना कहते ही जीवानंद, धीरानंद और लगभग पचीस जवान आ पहुँचे। घोर युद्ध हो रहा था। तलवारे रही थी। धीरानंद, भवानंद के पास थे। धीरानंद ने कहा- “भवानंद! क्यों? क्या मरने का किसी का ठेका है क्या?” यह कहते हुए धीरानंद ने एक गोरे को आहत किया।

भवानंद- “यह बात नहीं? लेकिन मरने पर तो तुम स्त्री-पुत्र का मुँह देखकर दिन बिता न पाओगे!”

धीरानंद- “दिल की बात कहते हो? अभी भी नहीं समझे?” (धीरानंद ने आहत गोरे का वध किया)।

भवानंद- “नहीं” (इसी समय एक गोरे के आघात से भवानंद का बायाँ हाथ कट गया।)

धीरानंद- “मेरी क्या मजाल थी कि तुम जैसे पवित्रात्मा से यह बातें मैं कहता? मैं सत्यानंद का गुप्तचर हो कर तुम्हारे पास गया था?”

भवानंद उस समय केवल एक हाथ से युद्ध कर रहे थे। बोले- “यह क्या? महाराज का मेरे प्रति अविश्वास?”

धीरानंद ने उनकी रक्षा करते हुए कहा- “कल्याणी के साथ तुम्हारी जितनी बातें हुई थी, सब उन्होंने स्वयं अपने कानों से सुनी।”

भवानंद- “यह कैसे?”

धीरानंद- “वे स्वयं वहाँ उपस्थित थे। सावधान बचो! (भवानंद ने एक गोरे द्वारा आहत होकर उसे आहत किया) वे कल्याणी को गीता पढ़ा रहे थे, उसी समय तुम आ गए। सावधान!” (लेकिन इसी समय भवानंद का दाहिना हाथ भी कट गया।)

भवानंद- “मेरी मृत्यु का समाचार उन्हें देना। कहना- मैं अविश्वासी नहीं हूँ।”

धीरानंद आँखों से आँसू भरे हुए युद्ध कर रहे थे। बोले- “यह वे जानते हैं। उन्होंने मुझसे कह दिया है कि भवानंद के पास रहना, आज वह मरेगा। मृत्यु के समय उससे कहना कि मैं आशीर्वाद देता हूँ, परलोक में तुम्हें बैकुण्ठ प्राप्त होगा।”

भवानंद ने कहा- “संतानों की जय हो! मुझे एक बार मरते समय ‘वन्देमातरम्’ गीत तो सुनाओ।”

इस पर धीरानंद की आज्ञा पाकर समस्त उन्मत्त संतानों ने एक साथ ‘वन्देमातरम्’ गीत गाया। इससे उनकी भुजाओं में दूना बल आ गया। इतनी देर में अवशिष्ट गोरो का वध हो चुका था। रणक्षेत्र में एक भी शत्रु न रह गया।

हा! रमणी के रूप-लावण्य!इस संसार में तुझे ही धिक्कर है!

रण-विजय के उपरान्त नदी तट पर सत्यानंद को घेरकर विजयी सेना विभिन्न उत्सवों में मत्त हो गयी। केवल सत्यानन्द दुःखी थे, भवानन्द के लिए।

अब तक संतानो के पास कोई रण-वाद्य नहीं था। अब न मालूम कहां से हजारो नगाड़े, ढोल, भेरी, शहनाई, तुरी, रामसिंघा, दमामा आ गये। तुमुल ध्वनि से नदी, तटभूमि और जंगल कांप उठा। इस प्रकार संतानो ने बहुत देर तक विजय का उत्सव मनाया। उत्सव के उपरांत सत्यानन्द स्वामी ने कहा-“आज भगवान सदाय हुए हैं; संतानो की विजय हुई है; धर्म की जय हुई है। लेकिन अभी एक बात बाकी है। जो हमलोगो के साथ इस उत्सव में शरीक न हो सके, जिन्होने हमारे उत्सव के लिए प्राण उत्सर्ग किए किए हैं, उन्हें हम लोगो को भूलना न चाहिए-विशेषतः उस वीराग्रगण्य भवानन्द को, जिसके अदम्य रण-कौशल से आज हमारी विजय हुई है। चलो, उसके प्रति हमलोग अपना अन्तिम कर्त्तव्य कर आएं।”

यह सुनते ही संतानगण बड़े समारोह से ‘वन्देमातरम्’ आदि जय-ध्वनि करते हुए रणक्षेत्र में पहुंचे। वहां उन लोगो ने चंदन-चिता सजा कर आदरपूर्वक भवानन्द की लाश सुलाई और आग लगा दी। इसके बाद वे लोग उस वीर की प्रदक्षिणा करते हुए ‘वन्देमातरम्’ का गीत गाते रहे। संतान-सम्प्रदाय विष्णुभक्त हैं, वैष्णव सम्प्रदाय नहीं। अतः इनके शव जलाए ही जाते थे।

इसके उपरांत उस कानन में केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेन्द्र, नवीनानन्द और धीरानन्द रह गए। यह पांचो जन परामर्श के लिए बैठ गए। सत्यानन्द ने कहा-“इतने दिनों से हम लोगो ने अपने सर्वकर्म, सर्वसुख त्याग रखे थे, आज यह व्रत सफल हुआ है। अब इस प्रदेश में यवन सेना नहीं रह गयी है। जो थोड़ी-बहुत बच गयी है, वह एक क्षण भी हमारे सामने टिक नहीं सकती। अब तुम लोग क्या परामर्श देते हो?”

जीवानन्द ने कहा-“चलिये, इसी समय चलकर राजधानी पर अधिकार करे।”

सत्यानन्द-“मेरा भी ऐसा मत है।”

धीरानन्द-“सेना कहां है?”

जीवानन्द-“क्यों, यही सेना!”

धीरानन्द-“यही सेना है कहां? किसी को देख रहे हैं?”

जीवानन्द-“स्थान-स्थान पर ये लोग विश्राम कर रहे होंगे; डंके पर चोट पड़ते ही इकट्ठे हो जाएंगे।”

धीरानन्द-“एक आदमी भी न पा सकेगे।”

सत्यानन्द-“क्यों?”

धीरानन्द-“सब इस समय लूट-पाट में व्यस्त हैं। इस समय सारे गांव आरक्षित हैं। मुसलमानो के गांव और रेशम की कोठी लुटने के बाद ही वे लोग घर लौटेंगे। अभी किसी को न पाएंगे, मैं देख आया हूँ।”

सत्यानन्द दुखी हुए बोले-“जो भी हो, इस समय यह समूचा प्रदेश हमारे अधिकार में आ गया है। अब यहां कोई हमारा प्रतिद्वन्दी नहीं है। अतएव इस वीरेन्द्र भूमि में तुम लोग अपना सन्तान-राज्य प्रतिष्ठित करो। प्रजा से कर वसूल करो और सैन्य-संग्रह करो। हिन्दुओ का राज्य हो गया है, यह सुनकर बहुतेरी संतान-सैन्य तुम्हारे झण्डे के नीचे आ जाएगी।”

इस पर जीवानन्द आदि ने सत्यानन्द को प्रणाम किया और कहा-“यदि आज्ञा हो महाराजाधिराज! तो हम लोग इसी जंगल में आपका सिंहासन स्थापित कर सकते हैं।”

सत्यानन्द ने अपने जीवन में यह प्रथम बार क्रोध प्रकट किया बोले-“क्या कहा? क्या मुझे केवल कच्चा घड़ा ही समझ लिया है? हमलोग कोई राजा नहीं हैं, हम केवल संन्यासी हैं। इस प्रदेश के राजा स्वयं बैकुण्ठनाथ हैं, जहां प्रजातन्त्र-राज्य स्थापित होगा। नगर अधिकारी के बाद तुम्ही लोग कार्यकर्ता होंगे। मैं तो ब्रह्मचर्य-शक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी स्वीकार न करूंगा। अब तुम लोग अपने-अपने काम में लगे।”

इस पर चारो व्यक्ति प्रणाम करने के बाद उठ गए। सत्यानंद ने इशारे से महेन्द्र को बैठे रहने के लिए कहा, अतः वे तीनों चले गए। अब सत्यानंद ने महेन्द्र से कहा- “तुम लोगो ने विष्णुमण्डप मे शपथ ग्रहण का सनातन धर्म स्वीकार किया था। भवानन्द और जीवानंद दोनो ने ही प्रतिज्ञा भंग की है। भवानन्द ने स्वीकृत प्रायश्चित्त कर लिया। हमे इस बात का भय है कि कही जीवानन्द भी किसी दिन प्रायश्चित्त न कर बैठे। लेकिन मेरा किसी निगूढ़ कारणवश विश्वास है कि वह अभी ऐसा न करेगा। अकेले तुम्ही ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। अब संतानो का कार्योद्धार हो गया है। तुम्हारी प्रतिज्ञा थी कि जब तक संतानो का कार्योद्धार न होगा, स्त्री-कन्या का मुंह न देखोगे। अब कार्योद्धार हो चुका है, अतः तुम फिर संसारी हो सकते हो।”

महेन्द्र की आंखो से आंसू की धारा बह निकली। बड़े कष्ट से महेन्द्र ने कहा- “महाराज! किसे लेकर संसारी बनूं? स्त्री ने आत्म हत्या कर ली, कन्या कहां है- पता नही! कहां-कहां खोजता फिरुंगा? कुछ भी तो नही जानता।”

इस पर सत्यानंद ने नवीनानंद को बुलाकर कहा- “महेद्र, ये नवीनानंद गोस्वामी है- बहुत ही पवित्रचेता और मेरे परम प्रिय शिष्य है। तुम्हारी कन्या की खोज कर देगे।” कहकर सत्यानंद ने शांति से कुछ इशारे से कहा। शांति समझकर प्रणाम कर विदा होना चाहती थी, इसी समय महेद्र ने कहा- “तुम्हारे साथ कहां मुलाकात होगी?”

शांति ने कहा- “मेरे आश्रम मे आइये।” यह कहकर शांति आगे-आगे चली।

महेद्र भी सत्यानंद की पदवंदना कर विदा हुए, फिर शांति के साथ-साथ उसके आश्रम मे उपस्थित हुए? उस समय काफी रात बीत चुकी थी। फिर भी विश्राम न कर शांति ने नगर की तरफ यात्रा की।

सबके चले जाने पर सत्यानंदन भूमि पर प्रणत होकर भगवान की वंदना और याद करने लगे। पौ फट रही थी। इसी समय किसी ने आकर उनके मस्तक का स्पर्श कर कहा- “मैं आ गया हूं।”

ब्रह्मचारी ने उठकर और चकित व्यग्रभाव से कहा- “आप आ गए क्या!”

जो आए थे उन्होने कहा- “दिन पूरे हो गए।”

ब्रह्मचारी ने कहा- “हे प्रभु! आज क्षमा कीजिए। आगामी माघी पूर्णिमा को मैं आपकी आज्ञा का पालन करुंगा।”

उस रात को हरिध्वनि के तुमुल नाद से प्रदेश भूमि परिपूर्ण हो गई। संतानो के दल-के-दल उस रात यत्र-तत्र ‘वंदेमातरम’ और ‘जय जगदीश हरे’ के गीत गाते हुए घूमते रहे। कोई शत्रु-सेना का शस्त्र तो कोई वस्त्र लूटने लगा। कोई मृत देह के मुंह पर पदाघात करने लगा, तो कोई दूसरी तरह का उपद्रव करने लगा, कोई गांव की तरफ तो कोई नगर की तरफ पहुंचकर राहगीरो और गृहस्थो को पकड़कर कहने लगा- “वंदेमातरम कहो, नही तो मार डालूंगा।” कोई मैदा-चीनी की दुकान लूट रहा था, तो कोई ग्वालो के घर पहुंचकर हांडी भर दूध ही छीनकर पीता था। कोई कहता- “हम लोग ब्रज के गोप आ पहुंचे, गोपियां कहां है?” उस रात मे गांव-गांव मे, नगर-नगर मे महाकोलाहल मच गया। सभी चिल्ला रहे थे- “मुसलमान हार गये; देश हम लोगो का हो गया। भाइयो! हरि-हरि कहो!”-गांव मे मुसलमान दिखाई पड़ते ही लोग खदेड़कर मारते थे। बहुतेरे लोग दलबद्ध होकर मुसलमानो की बस्ती मे पहुंचकर घरो मे आग लगाने और माल लूटने लगे। अनेक मुसलमान ढाढ़ी मुंढवाकर देह मे भस्मी रमाकर राम-राम जपने लगे। पूछने पर कहते-

“हम हिंदू है।”

त्रस्त मुसलमानो के दल-के-दल नगर की तरफ भागे। राज-कर्मचारी व्यस्त हो गए। अवशिष्ट सिपाहियो को

सुसज्जित कर नगर रक्षा के लिए स्थान-स्थान पर नियुक्त किया जाने लगा। नगर के किले में स्थान-स्थान पर, परिखाओ पर और फाटक पर सिपाही रक्षा के लिए एकत्रित हो गए। नगर के सारे लोग सारी रात जागकर “क्या होगा... क्या होगा?” करते रात बिताने लगे। हिंदू कहने लगे- “आने दो, संन्यासियों को आने दो- हिंदुओं का राज्य- भगवान करे- प्रतिष्ठित हो।” मुसलमान कहे लगे- “इतने रोज के बाद क्या सचमुच कुरानशरीफ झूठा हो गया? हम लोगो ने पांच वक्त नवाज पढ़कर क्या किया, जब हिंदुओं की फतह हुई। सब झूठ है!” इस तरह कोई रोता हुआ, तो कोई हंसता हुआ बड़ी उत्कंठा से रात बिताने लगा।

यह खबर कल्याणी के कानो में भी पहुंची आबाल-वृद्ध-वनिता किसी से भी बात छिपी नहीं। कल्याणी ने मन-ही-मन कहा- “जय जगदीश हरे! आज तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ। आज मैं स्वामी-दर्शन के लिए यात्रा करूंगी। हे प्रभु! आज मेरी सहायता करो।”

गहरी रात को कल्याणी शय्या से उठी और उसने पहले खिड़की खोलकर राह देखी। राह सूनी पड़ी हुई थी- कोई राह में नहीं था। तब उसने धीरे से दरवाजा खोलकर गौरी देवी का घर त्यागा। शाही राह पर आकर उसने मन-ही-मन भगवान को स्मरण कर कहा- “देव! आज पदचिन्ह का दर्शन करा दो।”

कल्याणी नगर के किनारे पहुंची। पहरेवाला ने आवाज दी- “कौन जाता है?” कल्याणी ने डरकर उत्तर दिया- “मैं औरत हूँ!” पहरेदार ने कहा- “जाने का हुक्म नहीं है।” वह आवाज जमादार के कान में पहुंची। उसने कहा- “जाने की मनाही नहीं है; जाने की मनाही नहीं है।” यह सुनकर पहरेवाले ने कहा- “जाने की मनाही नहीं है, माई! जाओ, लेकिन आज रात को बड़ी आफत है। कौन जाने माई! किसी आफत में पड़ जाओ- डाकुओं के हाथ में पड़ जाओ, मैं नहीं जानता? आज तो न जाना ही अच्छा है।”

कल्याणी ने कहा- “बाबा! मैं भिखारिन हूँ। मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। डाकू मुझे पकड़ कर क्या करेंगे?”

पहरेवाले ने कहा- “उम्र तो है, माई जी! उम्र तो है न! दुनिया में वही तो जवाहरात है। बल्कि हमी डाकू हो सकते हैं!” कल्याणी ने देखा, बड़ी विपदा है; वह धीरे से सरक गयी और फिर तेजी से आगे बढ़ी! पहरेदार ने देखा कि औरत रसिक मिजाज नहीं थी, लाचार होकर पहरे पर बैठा गांजे का दम लगाकर ही संतुष्ट हो गया। उस रात राह में दल-के-दल घूम रहे थे। कोई मार-मार कहता है, तो कोई भागो-भागो चिल्लाता है। कोई हंसता है, कोई रोता है, कोई राह में किसी को देखकर पकड़ लेता है। कल्याणी बड़ी विपदा में पड़ी। राह मालूम नहीं, और फिर किसी से पूछ भी नहीं सकती, केवल छिपती हुई राह चलने लगी। छिपते-छिपते एक विद्रोही दल के हाथ में पड़ गई। वे लोग चिल्लाकर पकड़ने दौड़े। कल्याणी प्राण लेकर जंगल के अंदर घुसकर भागी। वे सब शोर मचाते हुए पकड़ने के लिए पीछे दौड़े। आखिर एक ने आंचल पकड़ लिया, बोला- “वाह री, चंद्रमुखी!” इसी समय एक और आदमी अकस्मात् पहुंच गया और अत्याचारी को उसने एक लाठी जमायी; वह आहत होकर भागा। परित्राणकर्ता का वेश संन्यासियों का था और उसकी छाती ढंकी हुई थी! उसने कल्याणी से कहा- “तुम भय न करो। मेरे साथ आओ- कहां जाओगी?”

कल्याणी- “पदचिह्न।”

आगंतुक चौक उठा, विस्मित हुआ; पूछा- “क्या कहा? पदचिह्न?” यह कहकर कल्याणी के दोनों कंधों पर हाथ रखकर गौर से चेहरा देखने लगा।

कल्याणी अकस्मात् पुरुष-स्पर्श से भयभीत तथा रोमांचित होकर रोने लगी। इतनी हिम्मत नहीं हुई कि भाग सके। आगंतुक ने भरपूर देख लेने के बाद कहा- “ओ हो, पहचान गया! तुम्ही डायन कल्याणी हो?”

कल्याणी ने भयविह्वल होकर पूछा- “आप कौन हैं?”

आगन्तुक ने कहा, “मैं तुम्हारा दासानुदास हूँ। हे सुन्दरी! मुझ पर प्रसन्न हो।”

कल्याणी बड़ी तेजी से वहाँ से हटकर गर्जन कर बोली- “क्या यह अपमान के लिए ही आपने मेरी रक्षा की थी? देखती हूँ, ब्रह्मचारियों का क्या यही धर्म है? आज मैं निःसहाय हूँ, नहीं तो तुम्हारे चेहरे पर लात लगाती।”

ब्रह्मचारी ने कहा-“अयि स्मितवदने! मैं बहुत दिनों से तुम्हारे पुष्प समान कोमल शरीर के आलिंगन की कामना कर रहा हूँ?” यह कहकर दौड़कर ब्रह्मचारी ने कल्याणी को पकड़ लिया और जबर्दस्ती छाती से लगा लिया। अब कल्याणी खिलखिला कर हंस पड़ी, बोली “यह तुम्हारा कपाल है। पहले ही कह देना था- भाई, मेरी भी यही दशा है।” शान्ति ने पूछा-“क्यों भाई! महेन्द्र की खोज में चली हो?”

कल्याणी ने कहा-“तुम कौन हो? तुम तो सब कुछ जानती हो!”

शान्ति बोली-“मैं ब्रह्मचारी हूँ, सन्तान-सेना का अधिनायक-घोरतर वीर पुरुष! मैं सब जानता हूँ आज राह में सिपाहियों का बहुत हुड़दंग ऊधम है, अतः आज तुम पदचिन्ह जा न सकोगी!”

कल्याणी रोने लगी।

शान्ति ने त्योंरी बदलकर कहा-“डरती क्यों हो? हम अपने नयनबाणों से हजारों का वध कर सकते हैं- चलो, पदचिन्ह चले।”

कल्याणी ने ऐसी बुद्धिमती स्त्री की सहायता पाकर मानो हाथ बढ़ाकर स्वर्ग पा लिया। बोली- “तुम जहाँ कहोगी, वही चलूंगी।”

शान्ति कल्याणी को लेकर जंगली राह से चल पड़ी।

झुंझुंझुं आधी रात को शान्ति अपना आश्रम त्यागकर नगर की तरफ चली, तो उस समय जीवानंद वहाँ उपस्थित थे। शान्ति ने जीवानंद से कहा- “मैं नगर की तरफ जाती हूँ। महेन्द्र की स्त्री को ले आऊंगी। तुम महेन्द्र से कह रखो कि तुम्हारी स्त्री जीवित है।”

जीवानंद ने भवानंद से कल्याणी के जीवन की सारी बातें सुनी थी और उसका वर्तमान वास-स्थान भी सुन चुके थे। क्रमशः ये सारी बातें महेन्द्र को सुनाने लगे।

पहले तो महेन्द्र को विश्वास न हुआ। अन्त में अपार आनंद से अभिभूत अवाक हो रहे।

उस रात के बीतने पर सबेरे, शान्ति की सहायता से महेन्द्र के साथ कल्याणी की मुलाकात हुई। निस्तब्ध जंगल के बीच अतिघनी शालतरु श्रेणी की अंधेरी छाया के बीच, पशु-पक्षियों की निद्रा टूटने के पहले उन लोगों का परस्पर मिलन हुआ। म्लान अरण्य में फूटनेवाली पहली आभामयी किरणें और नक्षत्रराज ही साक्षी थे। दूर शिला-संघर्षिणी नदी का कलकल प्रवाह हो रहा था तो कहीं अरुणोदय की लालिमा से प्रफुल्ल-हृदय कोकिल की कुहू ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी।

क्रमशः एक पहर दिन चढ़ा। वहाँ शान्ति और जीवानंद आये। कल्याणी ने शान्ति से कहा- “मैं आप लोगों के हाथ बिना मूल्य के बिक चुकी हूँ। मेरी कन्या का पता लगाकर मेरे उस उपकार को पूर्ण कीजिए।”

शान्ति ने जीवानंद के चेहरे की तरफ देखकर कहा- “मैं अब सोऊँगा। आठ पहर बीते, मैं बैठा तक नहीं। आखिर मैं भी पुरुष हूँ!”

कल्याणी जरा मुस्कुरा दी। जीवानंद ने महेन्द्र की तरफ देखकर कहा- “यह भार मेरे ऊपर रहा। आप लोग पदचिन्ह की यात्रा कीजिए- वही आपकी कन्या पहुंचा दूँगा!”

जीवानंद भैरवीपुर-निवासी बहिन के पास से लड़की लाने चले। पर कार्य सरल न था!

पहले तो निमाई बात ही खा गई। इधर-उधर ताका, फिर एक-बारगी उसका मुंह फूलकर कुप्पा हो गया। इसके बाद वह रो पड़ी, बोली-“लड़की न दूंगी।”

निमाई अपनी उल्टी हथेलियों से आंसू पोछने लगी। जीवानंद ने कहा- “अरे बहन! तू रोती क्यों? ऐसा दूर भी तो नहीं है- न हो, बीच-बीच में उन लोगो के घर जाकर लड़की को देख आया करना।”

निमाई ने होठ फुलाकर कहा- “तो तुम लोगो की लड़की है, ले क्यो नहीं जाते? मुझसे क्या मतलब?” यह कहकर निमाई लड़की को उठा लाई और जीवानंद के पैर के पास पटककर वही बैठकर रोने लगी। अतः जीवानंद और कोई फुसलाने की राह न देखकर इधर-उधर की बाते करने लगे। लेकिन निमाई का क्रोध न गया। निमाई उठकर सुकुमारी के पहनने के कपड़े, उसके खेलने के खिलौने- बोज़ के बोज़ लाकर जीवानंद के सामने पटकने लगी। सुकुमारी स्वयं उन सबको बटोरने लगी। उसने निमाई से पूंछा- “क्यो मां ! मैं कहां जाऊंगी?” अब निमाई सह न सकी। उसने सुकुमारी को गोद में उठा लिया ओर चली गयी। इन्द्रचक्र पदचिन्ह के नये दुर्ग में आज बड़े सुख से महेन्द्र, कल्याणी, जीवानंद, शांति निमाई के पति और सुकुमारी - सब एकत्र है। सब आज सुख में विभोर है-आनंदमग्न है। शांति जिस रात कल्याणी को ले आयी, उसी रात उसने कह दिया था कि वह अपने पति महेन्द्र से यह न कहे, कि नीवानंद जीवानंद की पी है। एक दिन कल्याणी ने उसे अंतःपुर में बुला भेजा! नवीनानंद अतःपुर में घुस गया। उसने प्रहरियो की एक न सुनी।

शांति ने कल्याणी के पास आकर पूछा-“क्यो बुलाया है?”

कल्याणी -“पुरुष-वेश में कितने दिनों तक रहेगी? न मुलाकात हो पाती है, न बाते होती है। मेरे पति के सामने तुम्हें प्रकट होना पड़ेगा।”

नवीनानंद बड़ी चिन्ता में डूब गये- कुछ देर तक बोले ही नहीं। अन्त में बोले-“इनमें अनेक विघ्न हैं, कल्याणी!”

दोनों में इसी तरह बाते होने लगी। इधर जो प्रहरी नवीनानंद को जोर देकर अन्तःपुर में जाने से मना कर रहे थे, उन्होंने महेन्द्र से जाकर कहा कि नवीनानंद जबरदस्ती, मना करने पर भी अन्दर चले गये हैं। कौतूहलवश महेन्द्र भी अन्तःपुर में गये। महेन्द्र ने सीधे कल्याणी के कमरे में जाकर देखा कि नवीनानंद कमरे में खड़े हैं और कल्याणी उनके शरीर के बाघम्बर की गांठ खोल रही हैं। महेन्द्र बड़े अचम्भे में आए- बहुत ही नाराज हुए।

नवीनानंद ने उन्हें देख हंसकर कहा- “क्यो, गोस्वामी जी! सन्तान पर अविश्वास?”

महेन्द्र ने पूछा- “क्या भवानंद विश्वासी थे?”

नवीनानंद ने आंखें दिखाकर कहा-“कल्याणी क्या भवानंद के शरीर पर हाथ रखकर बाघ की खाल खोलती थी?” यह कहते हुए शांति ने कल्याणी का हाथ दबाकर पकड़ लिया बाघम्बर खोलने न दिया।

महेन्द्र -“तो इससे क्या हुआ?”

नवीनानंद-“मुझे पर अविश्वास कर सकते हैं लेकिन कल्याणी पर कैसे अविश्वास कर सकते हैं?”

अब महेन्द्र अप्रतिभ हुए बोले- “कहां, मैं अविश्वास कब करता हूँ?”

नवीनानंद -“नहीं तो मेरे पीछे अंतःपुर में क्यो आ उपस्थित हुए?”

महेन्द्र - “कल्याणी से कुछ बाते करनी थी, इसलिए आया हूँ।”

नवीनानंद -“तो इस समय जाइए! कल्याणी के साथ मुझे भी कुछ बाते करनी हैं। आप चले जाइए, मैं पहले बात करूंगा। आपका तो घर है, आप जब चाहे आकर बात कर सकते हैं। मैं तो बड़े कष्ट से आ पाया हूँ।”

महेन्द्र बेवकूफ बन गये। वे कुछ भी समझा न पाते थे- यह सब बात तो अपराधियो जैसी नहीं है। कल्याणी का भाव भी विचित्र है। वह भी तो अविश्वासिनी की तरह भागी नहीं, न डरी, न लज्जित ही हुई, वरन् मृदु भाव से मुस्करा रही है। वही कल्याणी, जिसने पेड़ के नीचे सहज ही विष खा लिया- वह क्या अपराधिनी हो सकती है?... महेद्र के मन में यही तर्क-वितर्क हो रहा था। इसी समय शांति ने महेद्र की यह दुःखस्था देख, कुछ मुस्कराकर कल्याणी की तरफ एक विलोल कटाक्षपात किया। सहसा अंधकार मिट गया- भला ऐसा कटाक्षपात भी कभी पुरुष कर सकते हैं। समझ गए कि नवीनानंद कोई स्त्री है। फिर भी शक था। उन्होंने साहस बटोरा और आगे बढ़कर एक झटके में नवीनानंद की ढाढ़ी खींच ली- ढाढ़ी-मूँछ हाथ में आ गई। इसी समय अवसर पाकर कल्याणी ने बाघम्बर की गाँठ खोल दी पकड़ी जाकर शांति शरमा कर सिर नीचा कर खड़ी रह गई।

अब महेद्र ने शांति से पूछा- “तुम कौन हो?”

शांति- “श्रीमान नवीनानंद गोस्वामी?”

महेद्र- “वह तो ठगी थी, तुम तो स्त्री हो!”

शांति- “यह तो देखते ही हैं आप!”

महेद्र- “तब एक बात पूछूँ- तुम स्त्री होकर जीवानंद के साथ हर समय क्यों रहती थी?”

शांति- “यह बात आप को न बताऊँगी।”

महेद्र- “तुम स्त्री हो, यह जीवानंद स्वामी जानते हैं?”

शांति- “जानते हैं।”

यह सुनकर विशुद्धात्मा महेद्र बहुत दुखी हुए।

यह देखकर अब कल्याणी चुप न रह सकी, बोली- “ये जीवानंद स्वामी की धर्मपी शांति देवी है?”

एक क्षण के लिए महेद्र का चेहरा प्रसन्न हो उठा। इसके बाद ही उनका चेहरा फिर गंभीर हो गया। कल्याणी समझ गई, “ये पूर्ण ब्रह्मचारिणी हैं।”

उत्तर बंगाल मुसलमानों के हाथ से निकल गया- यह बात मुसलमान मानते नहीं, दलील पेश करते हैं कि बहुतेरे डाकुओं का उपद्रव है- शासन तो हमारा ही है। इस तरह कितने वर्ष बीत जाते नहीं कहा जा सकता। लेकिन भगवान की इच्छा से वारेन हेटिंग्स इसी समय कलकत्ते में गवर्नर- जनरल होकर आए। वारेन हेटिंग्स मन ही मन सतोष करने वाले आदमी न थे, अन्यथा भारत में अंग्रेजी साम्राज्य स्थापित कर न पाते। उन्होंने तुरंत संतानो के दमनार्थ मेजर एडवर्ड नाम के एक दूसरे सेनापति को खड़ा कर दिया। मेजर ताजा गोरी फौज लेकर तैयार हो गए।

एडवर्ड ने देखा कि यह यूरोपीय युद्ध नहीं है। शत्रुओं की सेना नहीं, नगर नहीं, राजधानी नहीं, दुर्ग नहीं, फिर भी सब उनके अधीन है। जिस दिन जहाँ ब्रिटिश सेना का पड़ाव पड़ा, उस रोज वहाँ ब्रिटिश अधिकार रहा, दूसरे दिन शिविर टूटते ही फिर ‘वन्देमातरम’ की ध्वनि गूँजने लगी। साहब सर पटककर रह गये, पर यह पता न लगा कि एक क्षण में कहां से टिड्डियों की तरह विद्रोही सेना इकट्ठी हो जाती, ब्रिटिश अधिकृत गाँवों को फूंक देती है और रक्षकों की छोटी टुकड़ियों का सफाया करने के बाद फिर गायब हो जाती है? बड़ी खोज के बाद उन्हें मालूम हुआ कि पदचिन्ह में सन्तानों ने दुर्ग-निर्माण कर रखा है उसी दुर्ग पर अधिकार करना युक्तिसंगत समझा।

वह खुफियों द्वारा यह पता लगाने लगा कि पदचिन्ह में कितनी सन्तान-सेना रहती है। उसे जो समाचार मिला, उससे उस समय उसने दुर्ग पर आक्रमण करना उचित समझा। मन-ही-मन उसने एक अपूर्व कौशल की रचना की।

माघी पूर्णिमा सामने उपस्थित थी। उनके शिविर के निकट ही नदी तट पर बहुत बड़ा मेला लगेगा। इस बार मेले की बड़ी तैयारी है। मेले में सहज ही कोई एक लाख आदमी एकत्र होते हैं। इस बार वैष्णव राजा हुए हैं—शासक हुए हैं, अतः वैष्णवों ने इस बार मेले में आने का संकल्प कर लिया है। पदचिन्ह के रक्षक भी अवश्य ही मेले में पहुंचेंगे, इसकी कल्पना मेजर ने कर ली। उन्होंने निश्चय किया कि पदचिन्ह पर उसी समय आक्रमण कर अधिकार करना चाहिए।

यह सोचकर मेजर सने अफवाह उड़ा दी कि वे मेले पर आक्रमण करेंगे, उसी दिन वहां तमाम वैष्णव सन्तान इकट्ठे रहेंगे, अतः एक बार में ही उनका समूल विध्वंस होगा— वे वैष्णवों का मेला होने न देंगे।

यह खबर गांव-गांव में प्रचारित की गयी। अतः स्वभावतः जो संतान जहां था, वह वही से अस्त्र ग्रहण कर मेले की रक्षा के लिए चल पड़ा। सभी संतानों में माघी पूर्णिमा के मेले वाले नदी-तट पर आकर सम्मिलित होने लगे। मेजर साहब ने जो जाल फेंका था, वह सही होने लगा। अंगरेजों के सौभाग्य से महेन्द्र ने भी उस जाल में पांव डाल दिया। महेन्द्र ने पदचिन्ह में थोड़ी सी सेना छोड़कर शेष सारी सेना के साथ मेले के लिए प्रयाण किया।

यह सब होने के पहले ही जीवानंद और शांति पदचिन्ह से बाहर निकल गये थे। उस समय तक युद्ध की कोई बात नहीं थी, अतः युद्ध की तरफ उनका कोई ध्यान भी न था। माघी पूर्णिमा के दिन पवित्र जल में प्राण-विसर्जन कर वे लोग अपना प्रायश्चित्त करेंगे, यह पहले से निश्चित हो चुका था। राह में जाते-जाते उन्होंने सुना कि मेले में समस्त संतानों पर अंगरेजों का आक्रमण होगा तथा भयानक युद्ध होगा। इस पर जीवानंद ने कहा— “तब चलो, युद्ध में ही प्राण-विसर्जन करेंगे।”

वे लोग जल्दी-जल्दी चले। एक जगह रास्ता टीले के ऊपर से गया था। टीले पर चढ़कर वीर-दम्पति ने देखा कि नीचे थोड़ी दूर पर अंगरेजों का शिविर पड़ा हुआ है। शांति ने कहा— “मरने की बात इस समय ताक पर रखो, बोली - वन्देमातरम!”

इस पर दोनों ने ही चुपके-चुपके कुछ सलाह की। फिर जीवानंद पास के एक जंगल में छिप गए। शांति एक दूसरे में घुसकर अद्भुत काण्ड में प्रवृत्त हुईं।

शांति मरने जा रही थी, लेकिन उसने मृत्यु के समय स्त्री-वेश धारण करने का निश्चय किया था। महेन्द्र ने कहा था कि उसका पुरुष वेश ठगैती है, ठगी करते हुए मरना उचित नहीं। अतः वह साथ में अपना पिटारा लाई थी। उसमें उसकी पोशाक रहती थी। इस समय नवीनानंद पिटारा खोलकर अपना वेश परिवर्तन करने बैठे।

चिकने बालों को पीठ पर फहराए हुए, उस पर खैर का टीका-फटीका लगाकर नवीन लता-पुष्पो से सर ढंककर शांति खासी-वैष्णवी बन गईं। सारंगी उसने हाथ में ले ली। इस तरह का वह अंगरेज-शिविर पहुंच गईं। काली मूंछेवाले सिपाही उसे देखकर पागल हो उठे। चारों तरफ से लोगो ने उसे घेरकर गवाना शुरू किया। कोई ख्याल गवाता, तो कोई टप्पा, कोई गजल। किसी ने दाल दिया, किसी ने चावल, तो किसी ने मिठाई। किसी ने पैसे दिए, तो किसी ने चवन्नी ही दे दी। इसी तरह वैष्णवी अपनी आंखों से शिविर का हाल-चाल देखती घूमने लगीं।

सिपाहियों ने पूछा—“अब कब आओगी?”

वैष्णवी ने कहा—“कैसे बताऊं, मेरा घर बड़ी दूर है।”

सिपाहियों ने पूछा—“कितनी दूर?”

वैष्णवी ने कहा—“मेरा घर पदचिन्ह में है।”

एक सिपाही ने सुना था कि मेजर साहब पदचिन्ह की खबर लिया करते हैं, तुरंत वह वैष्णवी को मेजर साहब के शिविर में ले गया। मेजर साहब को देखकर वैष्णवी ने मधुर कटाक्ष का बाण छोड़ा। मेजर साहब का तो सर चक्कर खा गया। वैष्णवी तुरंत खंजड़ी बजाकर गाने लगी-

“मलेच्छ निवहनितमे कलयसि करवालम्”

साहब ने पूछा-“ओ बीबी! टोमारा घड़ कहां?”

बीबी बोली-“मैं बीबी नहीं हूँ, वैष्णवी हूँ। मेरा घर पदचिन्ह में है।”

साहब -“ह्वेयर इज दैट एडसिन पेडसिन? होआं ऐ ठो घर हाय?”

वैष्णवी बोली-“घर? है।”

साहब-“घर नई-गर-गर-नई-गड़-”

शांति-“साहब! मैं समझ गई, गढ़ कहते हो?”

साहब-“येस-येस, गर-गर...हाय?”

शांति-“गढ़ है-भारी किला है।”

साहब-“केहा आडमी?”

शांति-“गढ़ में कितने लोग रहते हैं? करीब बीस-पचीस हजार।”

साहब-“नान्सेस- एक ठो केल्ला में दो-चार हजर हने सकटा। अबी हुई पर हाय कि सब चला गया?”

शांति-“वे सब मेले में चले जाएंगे!”

साहब-“मेला में टोम कब आया होआं से?”

शांति-“कल आए है साहब!”

साहब-“ओ लोग आज निकेल गया होगा?”

शांति मन-ही-मन सोच रही थी कि-“तुम्हारे बाप के श्राद्ध के लिए यदि मैंने भात न चढ़ाया, तो मेरी रसिकता व्यर्थ है। कितने स्यार तेरा मुंड खाएंगे, मैं देखूंगी।” प्रकट रूप में बोली-“साहब! ऐसा हो सकता है, ऐसा हो सकता है। आज चला गया हो सकता है। इतनी खबर मैं नहीं जानती। वैष्णवी हूँ, मांगकर खाती हूँ-गाना गाती हूँ, तब आधा पेट भोजन पाती हूँ। इतनी खबर मैं क्या जानूँ? बकते-बकते गला सूख गया- पैसा दो, मैं जाऊँ। और अच्छी तरह बख्शीश दो, तो परसो खबर दूँ।”

साहब ने झन से एक रुपया फेकते हुए कहा-“परसो नहीं, बीबी!”

शांति बोली-“दुर बेटा, वैष्णवी कहो, बीबी क्या?”

साहब-“परसू नहीं, आज रात को खबर मिलने चाही।”

शांति-“बंदूक माथे के पास रखकर नाक में कड़वा तेल छुड़वाकर सोओ। आज ही मैं दस कोस रहा तय कर जाऊँ और आज ही फिर लौट आऊँ- और तुम्हें खबर दूँ? घासलेटी कही के!”

साहब-“घासलेटी किसको बोलता?”

शांति-“जो भारी वीर, जेनरल होता है।”

साहब-“ग्रेट जेनरल हाम होने सकता। हाम-क्लाइव का माफिक। लेकिन आज ही हमको खबर मेलना चाही। सौ रूपी बख्शीश देगा।”

शांति-“सौ दो, हजार दो, बीस हजार दो-पर आज रात भर में मैं इतना नहीं चल सकती।”

साहब-“घोड़े पर?”

शांति-“घोड़ा चढ़ना जानती तो तुम्हारे तंबू में आकर भीख मांगती?”

साहब-“एक दूसरा आदमी ले जाएगा।”

शांति-“गोद में बैठाकर ले जाएगा? मुझे लज्जा नहीं है?”

साहब-“केया मुस्किल! पान सौ रूपी देगा।”

शांति-“कौन जाएगा-तुम खुद जाएगा?”

इस पर एडवर्ड ने पास में खड़े एक युवक अंग्रेज को दिखाकर कहा-“लिंगले, तुम जाओ!” लिंगले ने शांति का रूप-यौवन देखकर कहा-“बड़ी खुशी से!”

इसके बाद बड़ा जानदार अरबी घोड़ा सजकर आ गया, लिंगले भी तैयार हो गया। शांति को पकड़कर वह घोड़े पर बैठने चला। शांति ने कहा-“छिः, इतने आदमियों के सामने? क्या मुझे लज्जा नहीं है? आगे चलो, बाहर चलकर घोड़े पर चढ़ेंगे।”

लिंगले घोड़े पर चढ़ गया। घोड़ा धीरे-धीरे चला, शांति पीछे-पीछे पैदल चली। इस तरह वे लोग छावनी के बाहर आए।

शिविर के बाहर एकांत आने पर शांति लिंगले के पैर पर पांव रखकर एक छलांग में पीठ पर पहुंच गई। लिंगले ने हंसकर कहा-“तुम तो पक्का घुड़सवार है!”

शांति-“हम लोग ऐसे पक्के घुड़सवार हैं कि तुम्हारे साथ चढ़ने में लज्जा लगती है। छीः, रकाव के सहारे तुम लोग चढ़ते हो?”

मारे शान के लिंगले ने रकाव से पैर निकाल लिया। इसी समय शांति ने पीछे से लिंगले को गला पकड़ कर छद्म दिया। वह तड़क से घोड़े पर से गिरा। घोड़ा भी भड़क उठा। फिर क्या था! शांति ने एक एंड लगाई और घोड़ा हवा से बाते करने लगा। शांति चार वर्ष तक सन्तानों के साथ रहकर पक्की घुड़सवार हो गई थी। बिना सीखे क्या जीवानंद का साथ दे सकती थी? लिंगले का पैर टूट गया और वह कराहने लगा। शांति हवा में उड़ती जाती थी।

जिस वन में जीवानंद छिपे हुए थे, वहां पहुंचकर शांति ने जीवानंद को सारा समाचार सुनाया। जीवानंद ने कहा-“तो मैं शीघ्र जाकर महेद्र को सतर्क करूं। तुम मेले में जाकर सत्यानंद को खबर दो। तुम घोड़े पर जाओ, ताकि प्रभु शीघ्र समाचार पा सके।”

इस तरह दोनों आदमी दो तरफ रवाना हुए। यह कहना व्यर्थ है कि शांति फिर नवीनानंद के रूप में हो गई। एडवर्ड भी पक्का अंग्रेज जेनरल था। छोटी घाटी में उसके आदमी थे-शीघ्र ही उन्हें खबर मिली कि उस वैष्णवी ने लिंगले को घोड़े से गिराकर स्वयं रास्ता लिया। सुनते ही एडवर्ड ने हुक्म दिया-“टेट उखाड़ो-उस शैतान का पीछा करो!”

खटाखट तम्बुओं के खूंटों पर हथौड़े पड़ने लगे। मेघरचित अमरावती की तरह सवार घोड़ों पर और पदातिक पैदल चलने को तैयार हो गए। हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, गोरे, बंदूक कंधे पर लिए मच-मच चल पड़े। तापे खच्चरो द्वारा खींची जाकर घर-घर करती चल पड़ी।

इधर महेद्र संतान-सेना के साथ मेले की तरफ अग्रसर हुए। उसी दिन शाम को महेद्र ने सोचा अंधेरा हो चला, अब शिविर डलवा देना चाहिए।

उसी समय पड़ाव डाल देना ही उचित जान पड़ा। संतानों का शिविर कैसा? पेड़ के तनों से लगकर छाया में सब चित-पट सो रहे। हरिचरणामृत पान कर डकार ली उन्होंने। जो कुछ भूख बाकी थी, स्वप्न में वैष्णवी के अधर-रस का पान कर उसे पूरा करने लगे। जहां पड़ाव पड़ा था, वहां बहुत सुंदर आम-कानन के पास ही एक बड़ा टीला था। महेद्र ने सोचा कि इसी टीले पर यदि पड़ाव पड़े तो कितना सुखद हो! मन में हुआ कि टीले

को देख लेना चाहिए।

यह सोचकर महेद्र घोड़े पर चढ़कर धीरे-धीरे टीले पर चढ़ने लगे। अभी तक टीले पर आधा ही चढ़े थे, कि उनकी संतान-सेना में एक युवक वैष्णव आ पहुंचा। उसने संतानो से कहा-“चलो, टीले पर चढ़ चले।” उसके समीप जो सैनिक खड़े थे, उन्होंने पूछा-“क्यों?”

यह सुनकर वह योद्धा एक छोटी चट्टान पर खड़ा हो गया, उसने ललकारकर कहा-“आओ, वीरो! आज इसी टीले पर चढ़कर चांदनी का आनंद और मधुर वन्य पुष्पो का सौरभ-पान करते हुए शत्रुओं से बदला ले...युद्ध करे।” संतानो ने देखा कि यह योद्धा और कोई नहीं, हमारे सेनापति जीवानंद हैं। इस पर सारी सेना-“हरे मुरारे!” कहती हुई गगनभेदी जयोल्लास से हुंकार करती हुई, भालो पर बोझा दे उठ खड़ी हुई और जीवानंद के पीछे-पीछे टीले पर चढ़ने लगी। एक ने सजा हुआ घोड़ा जीवानंद को लाकर दिया। दूर से महेद्र ने जो यह देखा, तो विस्मित हुए। सोचने लगे- यह क्या? बिना कहे ये सब क्यों चले आ रहे हैं।

यह सोचकर महेद्र ने तुरंत घोड़े का मुंह फिराया और एंड लगाते ही धूल बादल उड़ते हुए नीचे आए। संतान-वाहिनी के अग्रवर्ती जीवानंद को देखकर उन्होंने पूछा-“यह क्या आनंद?”

जीवानंद ने हंसकर उत्तर दिया-“आज बड़ा आनंद है। टीले के उस पार एडवर्ड पहुंच गए हैं। टीले पर जो पहले पहुंचेगा, उसी की जीत होगी।”

इसके बाद जीवानंद ने संतान सेना से कहा-“पहचानते हो? मैं जीवानंद हूँ। मैंने सहस्र-सहस्र शत्रुओं का वध किया है।”

तुमुल निनाद से दिग्गंत कांप उठा। सैनिकों ने एक स्वर से कहा-“पहचानते हैं, हम अपने सेनापति को पहचानते हैं।”

जीवानंद-“बोलो, हरे मुरारे!”

जंगल का कोना-कोना कांप उठा, प्रतिध्वनित हुआ-“हरे मुरारे”

जीवानंद-“वीरो! टीले के उस पार शत्रु है। आज ही इस स्तूप के ऊपर, विमल चांदनी में संतानो का महारण होगा। जल्दी चढ़ो- जो पहले चढ़ेगा, उसी की जीत होगी। बोलो-बन्देमातरम्”

फिर प्रतिध्वनि हुई-“बन्देमातरम्-“ धीरे-धीरे संतान-सेना पर्वत शिखर पर चढ़ने लगी। किंतु उन लोगों ने सहसा देखा कि महेद्र बड़ी ही तेजी से उतरे चले आ रहे हैं। उतरते हुए महेद्र ने महानिदान किया। देखते-देखते पर्वत-शिखर पर नीलाकाश में अंगरेजों की तोपे आ लगी। उच्च स्वर में वैष्णवी सेना ने गाया-

“तुमी विद्या तुमी भक्ति

तभी मां बाहुते शक्ति

त्वं हि प्राणः शरीरे!” ...

लेकिन इसी समय अंगरेजों की तोपे गर्जन कर उठी- आग उगलने लगी, उस महानिनाद में गीत की आवाज गायब हो गई। बार-बार ‘गुड्डम-गुड्डम’ करती हुई अंग्रेजों की तोपे गर्जन पर संतान-सेना का नाश करने लगी। खेत में जैसे फसल काटी जाती है, उसी तरह संतान-सेना कटने लगी। यह ऊपर की भयानक मार संतान-सेना न सह सकी, तुरंत भाग खड़ी हुई- जिसे जिधर राह मिली, वह उधर ही भागा। इस पर “हुर्र, हुर्र” करती हुई ब्रिटिश वाहिनी संतानो का समूल नाश करने के लिए उतरने लगी। संगीने चढ़कर, पर्वत से गिरनेवाली भयंकर शिला की तरह, शिक्षित गोरी फौज संतानो को खदेड़ती हुई तीव्र वेग से उतरने लगी। जीवानंद ने महेद्र को सामने देखकर कहा-“बस आज अंतिम दिन है। आओ यही मरे।”

महेद्र ने कहा-“मरने से यदि रण-विजय हो, तो कोई हर्ज नहीं, किंतु व्यर्थ प्राण गंवाने से क्या मतलब? व्यर्थ मृत्यु वीर-धर्म नहीं है।”

जीवानंद-“मैं व्यर्थ ही मरूंगा, लेकिन युद्ध करके मरूंगा।”

कहकर जीवानंद ने पीछे पलटकर कहा-“भाईयो! भगवान की शपथ लो कि जीवित न लौटेगे।”

जीवानंद ने घोड़े की पीठ पर से ही, बहुत पीछे खड़े महेद्र से कहा-“भाई महेद्र! नवीनंद से मुलाकात हो तो कह देना कि परलोक मे मुलाकात होगी।”

यह कहकर वह वीरश्रेष्ठ बाएं हाथ में बलम आगे किए हुए और दाहिने हाथ से बंदूक चलाते, मुंह से ‘हेरे मुरारे! हेरे मुरारे!’ कहते हुए तीर की तरह उस बरसती हुई आग को चीरते हुए टीले पर बढ़े वेग से आगे बढ़ने लगे। इस तरह महान् साहस का परिचय देते हुए और शत्रुक्षय करते हुए जीवानंद अकेले अभिमन्यु की तरह शत्रु-व्यूह में घुसते चले जा रहे थे, मानो एक मस्त हाथी कमल-वन को रौंदा चला जाता हो।

भागती हुई संतान-सेना को दिखाकर महेद्र ने कहा-“देखो, कायरो! भागनेवालो- अपने सेनापति का साहस देखो! देखने से जीवानंद मर नहीं सकते।”

संतानो ने पलटकर जीवानंद का अद्भुत साहस प्रत्यक्ष देखा। पहले उन सबने देखा, फिर बोले-“स्वामी जीवानंद मरना जानते हैं, तो क्या हम नहीं जानते? चलो जीवानंद के साथ बैकुंठ चले!”

बस, यही से रण ने पलटा खाय। संतान-सेना पलट पड़ी। पीछे भागनेवालो ने देखा कि पलट रहे हैं, तो उन्होंने समझा कि संतानो की विजय हुई है। अतः वे भी तुरत चल पड़े।

महेद्र ने देखा कि जीवानंद शत्रुओं की सेना में घुस गए हैं, अब दिखाई नहीं पड़ते। उन्मत्त संतान-सेना ने टीले से उतरी हुई अंग्रेज-वाहिनी पर प्रचंड आक्रमण किया- अंग्रेजों के पैर उखड़ गए। वे लोग इस आक्रमण को सह न सके, उनकी संगीने पलटकर भागने की तरफ दिखाई दी। पीछे चढ़ती हुई संतान-सेना उनका विनाश करती जा रही थी। भागी हुई संतान-सेना अभी तक बराबर पलटती हुई रण भूमि में चढ़ती जाती थी।

महेद्र खड़े यह देख रहे थे। सहसा पर्वत-शिखर पर संतानो की पताका उड़ती दिखाई दी। वहां सत्यानंद महाप्रभु, स्वयं चक्रपाणि विष्णु की तरह बाएं हाथ में ध्वजा लिए हुए और दाहिने में रक्त से लाल तलवार लिए खड़े थे। वह देखते ही संतानो में अपूर्व बल आ गया-“हेरे मुरारे!” का गगन में वह जयनाद हुआ कि वस्तुतः वसुंधरा कांपती हुई नजर आई।

इस समय अंग्रेजी सेना दोनों दलों के बीच में थी- ऊपर प्रभु सत्यानंद ने तोपो पर अधिकार कर लिया था, नीचे से संतान-सेना पलटकर चढ़ती हुई मार रही थी।

महेद्र ने देखा कि ऊपर से “वन्देमातरम्” का निनाद करते हुए सत्यानंद, अवशिष्ट ब्रिटिश वाहिनी के नाश के लिए उतरे। इधर से बची हुई सेना लेकर महेद्र ने संतानो को साहस दिलाते हुए भयंकर आक्रमण कर दिया। मध्य टीले पर भयंकर युद्ध हुआ। अंग्रेज चक्री के दो पाटो में फंसे चने की तरह पिसने लगे। थोड़ी ही देर में एक भी ब्रिटिश सैनिक खड़ा न दिखाई दिया। धरती लाल हो गई- रक्त की नदी बह गई।

वहां ऐसा भी कोई न बचा, जो वारेन हेस्टिंग्स के पास खबर ले जाता।

पूर्णिमा की रात है। यह भीषण रणक्षेत्र इस समय स्थिर है। वह घोड़ों की टाप की आवाज, बंदूकों की गरज और गोलों की वर्षा गायब हो गई है। न कोई हुर्र करता है न कोई हेरे मुरारे। आवाज आती है, तो केवल कुत्तों और स्यारों की। रह-रहकर घायलों का क्रंदन सुनाई पड़ता है। किसी का पैर कटा है, किसी का हाथ कटा है, किसी का पंजर घायल हुआ है। कोई राम को पुकारता है, कोई गॉड। कोई पानी मांगता है, कोई मृत्यु का

आह्वान करता है। उस चांदनी रात में श्याम भूमि लाल वसन पहनकर भयानक हो गई थी। किसकी हिम्मत थी कि वहां जाता?

साहस तो किसी का नहीं है लेकिन उस निस्तब्ध भयंकर रात में भी एक रमणी उस अगम्य रणक्षेत्र में विचरण कर रही है। वह एक मशाल लिए रणक्षेत्र में किसी को खोज रही है— हरेक शव का मुंह रोशनी में देखकर दूसरे के पास चली जाती है। कहीं कोई मृत देह अश्व के नीचे पड़ी है, तो वही मुश्किल से मशाल रख, दोनों हाथों से अश्व को हटाकर शव देखती और हताश हो आगे बढ़ जाती है। वह जिसे खोज रही थी, उसे न पाया। अब वह मशाल छोड़, रक्तमय जमीन पर पछाड़ खा गिरकर रोने लगी। पाठको! यह शांति है वीर जीवानंद के शव को खोज रही है।

शांति जिस समय जमीन पर गिरकर रो रही थी, उसी समय उसे एक मधुर करुण शब्द सुनाई पड़ा—“उठो, बेटी!, रोओ नहीं!” शांति ने देखा, चांदनी रात में सामने एक जटाजूटधारी विराट महापुरुष खड़े हैं। शांति उठकर खड़ी हो गई! जो आए थे, उन्होंने कहा—“रोओ नहीं, बेटी! जीवानंद शांति ने पहचाना—वह जीवानंद की देह थी। सर्वांग क्षत-विक्षत, रुधिर से सने हुए थे। शांति यह कहकर वे महापुरुष शांति को रणक्षेत्र के मध्य में ले गए। वही शवों का एक स्तूप लगा हुआ था। शांति उसे हटा न सकी थी। उस महापुरुष ने स्वयं शवों को हटाकर एक शव बाहर निकाला। शांति ने पहचाना— वह जीवानंद की देह थी। सर्वांग क्षत-विक्षत रुधिर से सने हुए थे। शांति सामान्य स्त्री की तरह जोरो से रो पड़ी!”

महापुरुष ने फिर कहा—“रोओ नहीं बेटी! क्या जीवानंद मर गए हैं? शांत होकर उनका शरीर देखो, नाड़ी की परीक्षा करो!”

शांति ने शव की नाड़ी देखी, नाड़ी का पता न था। वे बोले—“छाती पर हाथ रखकर देखो!”

शांति ने छाती पर हाथ रखकर देखा, गतिहीन ठंढा था!

फिर महापुरुष ने कहा—“नाक पर हाथ रखकर देखो, कुछ भी श्वास नहीं है?”

शांति ने देखा, किंतु हताश हो गई।

महापुरुष ने फिर कहा—“मुंह में उंगली डालकर देखो, कुछ गरमी मालूम पड़ती है?”

आशामुग्धा शांति ने वह भी किया, बोली—“मुझे कुछ पता नहीं लगता है!”

महापुरुष ने बायां हाथ शव पर रखकर कहा—“बेटी, तुम घबरा गई हो। देखो अभी देह में हलकी गरमी है!”

अब शांति ने फिर नाड़ी देखी— देखा कि मन्द, अतिमन्द गति है। विस्मित होकर उसने छाती पर हाथ रखा— मृदुधड़कन है। नाक पर हाथ रखकर देखा— हल्की सांस है। शांति ने विस्मित होकर पूछा—“क्या प्राण था? या फिर से आ गया है?”

उन्होंने कहा—“भला ऐसा कभी हुआ है, बेटी! तुम इन्हे उठाकर तालाब के किनारे तक ले चल सकोगी? मैं चिकित्सक हूँ, इनकी चिकित्सा करूँगा!”

शांति जीवानंद को तालाब पर ले जाकर घाव धोने लगी। इसी समय उन महापुरुष ने लता आदि का प्रलेप लाकर घावों पर लगा दिया। इसके बाद वे जीवानंद का शरीर सहलाने लगे। अब जीवानंद के श्वास-प्रश्वास तेज हो गए। कुछ ही क्षण में उठ बैठे। शांति के मुंह की तरफ देखकर उन्होंने पूछा—“युद्ध में किसकी विजय हुई?”

शांति ने कहा—“तुम्हारी विजय! इन महात्मा को प्रणाम करो?”

अब दोनों ने देखा कि वहां कोई नहीं है, किसे प्रणाम करे!

समीप ही संतान-सेना का विजयोल्लास सुनाई पड़ रहा था। लेकिन शांति या जीवानंद में से कोई भी न उठा।

दोनों विमल ज्योस्तना में पुष्करिणी-तट पर बैठे रहे। जीवानंद का शरीर अद्भुत औषध बल से जल्द ही ठीक हो गया। जीवानंद ने कहा-“शांति! चिकित्सक की दवा में गुण है। अब मेरे शरीर में जरा भी ग्लानि या कष्ट नहीं है। बोलो, अब कहां चले संतान सेना का जयोल्लास सुनाई पड़ रहा है!”

शांति बोली-“अब वहां नहीं। माता का कार्योद्धार हो गया है। अब यह देश संतानों का है। अब वहां क्या करने चले?”

जीवानंद-“जो राज्य छीना है उसकी बाहुबल से रक्षा तो करनी होगी।”

शांति-“रक्षा के लिए महेंद्र है। तुमने प्रायश्चित्त कर संतान-धर्म के लिए प्राण-त्याग दिया था। अब पुनः प्राप्त इस जीवन पर संतानों का अधिकार नहीं है। हमलोग संतानों के लिए मर चुके हैं। अब हमें देखकर संतान लोग कह सकते हैं कि प्रायश्चित्त के भय से ये लोग छिप गए थे, अब विजय होने पर प्रकट हो गए हैं- राज्य-भाग लेने आए हैं।”

जीवानंद-“यह क्या शांति? लोगों के अपवाद-भय से अपना कर्तव्य छोड़ दे। मेरा कार्य मातृसेवा है। दूसरा चाहे जो कहे, मैं मातृ-सेवा करूंगा।”

शांति-“अब तुम्हें इसका अधिकार नहीं है, क्यों कि तुमने मातृ-सेवा के लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अब-यदि सेवा करोगे, तो तुमने उत्सर्ग क्या किया? मातृ-सेवा से वंचित होना ही प्रधान प्रायश्चित्त है। अन्यथा जीवन त्याग देना क्या कोई बड़ा काम है?”

जीवानंद-“शांति! तुमने ठीक समझा। लेकिन मैं अपने प्रायश्चित्त को अधूरा न रखूंगा। मेरा सुख संतान-धर्म में है, लेकिन कहां जाऊंगा? मातृ-सेवा त्यागकर घर जाने में क्या सुख मिलेगा?”

शांति-“यह तो मैं कहती नहीं हूँ। हम लोग अब गृहस्थ नहीं हैं, हम दोनों ही संन्यासी रहेंगे- फिर ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। चलो हम लोग देश-पर्यटन कर देव-दर्शन करें।”

जीवानंद-“इसके बाद?”

शांति-“इसके बाद हिमालय पर कुटी का निर्माण कर हम दोनों ही देवाराधना करेंगे- जिससे माता का मंगल हो, यही वर मांगेंगे।”

इसके बाद दोनों ही उठकर हाथ में हाथ दे, ज्योत्सनामयी रात्रि में अन्तर्हित हो गए।

हाय मां! क्या फिर जीवानंद सदृश पुत्र और शांति जैसी कन्या तुम्हारे गर्भ में आएंगे?

स्वामी सत्यानंद रणक्षेत्र में किसी से कुछ न कहकर आनंदमठ में लौट आए। वहां वे गंभीर रात्रि में विष्णु-मंडप में बैठकर ध्यानमग्न हुए। इसी समय उन चिकित्सक ने वहां आकर दर्शन दिया। देखकर सत्यानंद ने उठकर प्रणाम किया।

चिकित्सक बोले-“सत्यानंद! आज माघी पूर्णिमा है।”

सत्यानंद-“चलिए मैं तैयार हूँ। किंतु महात्मन्! मेरे एक संदेह को दूर कीजिए। मैंने क्या इसीलिए युद्ध-जय कर संतान-धर्म की पताका फहरायी थी?”

जो आए थे, उन्होंने कहा-“तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया, मुसलिम राज्य ध्वंस हो चुका। अब तुम्हारी यहां कोई जरूरत नहीं, अनर्थक प्राणहत्या की आवश्यकता नहीं।”

सत्यानंद-“मुसलिम राज्य ध्वंस अवश्य हुआ है, किंतु अभी हिंदु राज्य स्थापित हुआ नहीं है। अभी भी कलकत्ते में अंगरेज प्रबल हैं।”

वे बोले-“अभी हिंदु-राज्य स्थापित न होगा। तुम्हारे रहने से अनर्थक प्राणी-हत्या होगी, अतएव चलो!”

यह सुनकर सत्यानंद तीव्र मर्म-पीड़ा से कातर हुए, बोले-“प्रभो! यदि हिंदू-राज्य स्थापित न होगा, तो कौन

राज्य होगा? क्या फिर मुसलिम-राज्य होगा?’

उन्होंने कहा-“नहीं, अब अंगरेज-राज्य होगा।”

सत्यानंद की दोनो आंखो से जलधारा बहने लगी। उन्होने सामने जननी-जन्मभूमि की प्रतिमा की तरफ देख हाथ जोड़कर कहा-“हाय माता! तुम्हारा उद्धार न कर सका। तू फिर म्लेच्छो के हाथ मे पड़ेगी। संतानो के अपराध को क्षमा कर दो मां! रणक्षेत्र मे मेरी मृत्यु क्यो न हो गई?’

महात्मा ने कहा-“सत्यानंद कातर न हो। तुमने बुद्धि विभ्रम से दस्युवृत्ति द्वारा धन संचय कर रण मे विजय ली है। पाप का कभी पवित्र फल नहीं होता। अतएव तुम लोग देश-उद्धार नहीं कर सकोगे। और अब जो कुछ होगा, अच्छा होगा। अंगरेजो के बिना राजा हुए सनातन धर्म का उद्धार नहीं हो सकेगा। महापुरुषो ने जिस प्रकार समझाया है, मैं उसी प्रकार समझाता हूँ- ध्यान देकर सुनो! तैतिस कोटि देवताओ का पूजन सनातन-धर्म नहीं है। वह एक तरह का लौकिक निकृष्ट-धर्म, म्लेच्छ जिसे हिंदू-धर्म कहते हैं- लुप्त हो गया। प्रकृति हिंदू-धर्म ज्ञानात्मक- कार्यात्मक नहीं। जो अन्तर्विषयक ज्ञान है- वही सनातन-धर्म का प्रधान अंग है। लेकिन बिना पहले बहिर्विषयक ज्ञान हुए, अन्तर्विषयक ज्ञान असंभव है। स्थूल देखे बिना सूक्ष्म की पहचान ही नहीं हो सकती। बहुत दिनों से इस देश मे बहिर्विषयक ज्ञान लुप्त हो चुका है- इसीलिए वास्तविक सनातन-धर्म का भी लोप हो गया है। सनातन-धर्म के उद्धार के लिए पहले बहिर्विषयक ज्ञान-प्रचार की आवश्यकता है। इस देश मे इस समय वह बहिर्विषयक ज्ञान नहीं है- सिखानेवाला भी कोई नहीं, अतएव बाहरी देशो से बहिर्विषयक ज्ञान भारत मे फिर लाना पड़ेगा। अंगरेज उस ज्ञान के प्रकाण्ड पंडित है- लोक-शिक्षा मे बड़े पटु है। अतः अंगरेजो के ही राजा होने से, अंगरेजी की शिक्षा से स्वतः वह ज्ञान उत्पन्न होगा! जब तक उस ज्ञान से हिंदु ज्ञानवान, गुणवान और बलवान न होंगे, अंगरेज राज्य रहेगा। उस राज्य मे प्रजा सुखी होगी, निष्कंटक धर्माचरण होंगे। अंगरेजो से बिना युद्ध किए ही, निरस्त्र होकर मेरे साथ चलो !”

सत्यानंद ने कहा-“महात्मन्! यदि ऐसा ही था- अंगरेजो को ही राजा बनाना था, तो हम लोगो को इस कार्य मे प्रवृत्त करने की क्या आवश्यकता थी?’

महापुरुष ने कहा-“अंगरेज उस समय बनिया थे- अर्थ संग्रह मे ही उनका ध्यान था। अब संतानो के कारण ही वे राज्य-शासन हाथ मे लेगे, क्योकि बिना राजत्व किए अर्थ-संग्रह नहीं हो सकता। अंगरेज राजदण्ड ले, इसलिए संतानो का विद्रोह हुआ है। अब आओ, स्वयं ज्ञानलाभ कर दिव्य चक्षुओ से सब देखो, समझो !”

सत्यानंद-“हे महात्मा! मैं ज्ञान लाभ की आकांक्षा नहीं रखता-ज्ञान की मुझे आवश्यकता नहीं। मैंने जो व्रत लिया है, उसी का पालन करूंगा। आशीर्वाद कीजिए कि मेरी मातृभक्ति अचल हो !”

महापुरुष-“व्रत सफल हो गया- तुमने माता का मंगल-साधन किया- अंगरेज राज्य तुम्ही लोगो द्वारा स्थापित समझो! युद्ध-विग्रह का त्याग करो- कृषि मे नियुक्त हो, जिसे पृथ्वी शस्यशालिनी हो, लोगो की श्रीवृद्धि हो !”

सत्यानंद की आंखो से आंसू निकलने लगे, बोले-“माता को शत्रु-रक्त से शस्यशालिनी करूं?’

महापुरुष-“शत्रु कौन है? शत्रु अब कोई नहीं। अंगरेज हमारे मित्र है। फिर अंगरेजो से युद्ध कर अंत मे विजयी हो- ऐसी अभी किसी की शक्ति नहीं?’

सत्यानंद-“न रहे, यही माता के सामने मैं अपना बलिदान चढ़ा दूंगा !”

महापुरुष -“अज्ञानवश! चलो, पहले ज्ञान-लाभ करो। हिमालय-शिखर पर मातृ-मंदिर है, वही तुम्हे माता की मूर्ति प्रत्यक्ष होगी !”

यह कहकर महापुरुष ने सत्यानंद का हाथ पकड़ लिया। कैसी अपूर्व शोभा थी! उस गंभीर निस्तब्ध रात्रि मे

विराट चतुर्भुज विष्णु-प्रतिमा के सामने दोनो महापुरुष हाथ पकड़े खड़े थे। किसको किसने पकड़ा है? ज्ञान ने भक्ति का हाथ पकड़ा है, धर्म के हाथ मे कर्म का हाथ है, विजर्जन ने प्रतिष्ठा का हाथ पकड़ा है। सत्यानंद ही शांति है- महापुरुष ही कल्याण है- सत्यानंद प्रतिष्ठा है- महापुरुष विसर्जन है।

विसर्जन ने आकर प्रतिष्ठा को साथ ले लिया।

॥ इति ॥